ebookspdf.in

कॉपीराइट
सरस्वती प्रेस, बनारस

प्रथम संस्करण	१०००	जनवरी	१९४५
द्वितीय संस्करण	१०००	दिसम्बर	१९४५
तृतीय संस्करण	३०००	अप्रैल	१९५३
चतुर्थ संस्करण	३०००	जुलाई	१९५५

मूल्य २॥)

मुद्रक —
श्रीराधाकान्त खण्डेलवाल
साहित्यरत्न
खण्डेलवाल प्रेस
भेलूपुर, बनारस

वरदान

विन्ध्याचल पर्वत मध्यरात्रि के निविड़ अन्धकार में काले देव की भाँति खड़ा था। उस पर उगे हुए छोटे-छोटे वृक्ष इस प्रकार दृष्टिगोचर होते थे, मानो ये उसकी जटाएँ हैं। और अष्टभुजी देवी का मन्दिर—जिसके कलश पर श्वेत पताकाएँ वायु की मन्द-मन्द तरङ्गों से लहरा रही थीं—उस देव का मस्तक है। मन्दिर में एक झिलमिलाता हुआ दीपक था, जिसे देखकर किसी धुँधले तारे का ज्ञान हो जाता था।

अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। चारों ओर भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। गङ्गाजी की काली तरङ्गें पर्वत के नीचे सुखद प्रवाह से बह रही थीं। उनके बहाव से एक मनोरञ्जक राग की ध्वनि निकल रही थी। ठौर-ठौर नावों पर और किनारों के आस-पास मल्लाहों के चूल्हों की आँच दिखायी देती थी। ऐसे समय में एक श्वेत वस्त्रधारिणी स्त्री अष्टभुजी देवी के सम्मुख हाथ बाँधे बैठी हुई थी। उसका प्रौढ़ मुखमण्डल पीला था और भावों से कुलीनता प्रकट होती थी। उसने देर तक सिर झुकाये रहने के पश्चात् कहा—

माता! आज बीस वर्ष से कोई मङ्गलवार ऐसा नहीं गया जब कि मैंने तुम्हारे चरणों पर सिर न झुकाया हो। एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब कि मैंने तुम्हारे चरणों का ध्यान न किया हो। तुम जगतारिणी महारानी हो। तुम्हारी इतनी सेवा करने पर भी मेरे मन की अभिलाषा पूरी न हुई। मैं तुम्हें छोड़कर अब कहाँ जाऊँ?

'माता ! मैंने सैकड़ों व्रत रखे, देवताओं की उपासनाएँ कीं, तीर्थ-यात्राएँ कीं, परन्तु मनोरथ पूरा न हुआ। तब तुम्हारी शरण आयी। अब तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ ? तुमने सदा अपने भक्तों की इच्छाएँ पूरी की हैं। क्या मैं तुम्हारे दरबार से निराश हो जाऊँ ?'

सुवामा इसी प्रकार देर तक विनती करती रही। अकस्मात् उसके चित्त पर अचेत करनेवाले अनुराग का आक्रमण हुआ। उसकी आँखें बन्द हो गयीं और कान में ध्वनि आयी—

'सुवामा ! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। माँग, क्या माँगती है ?'

सुवामा रोमाञ्चित हो गयी। उसका हृदय धड़कने लगा। आज बीस वर्ष के पश्चात् महारानी ने उसे दर्शन दिये। वह काँपती हुई बोली— 'जो कुछ माँगूँगी, वह महारानी देंगी ?'

'हाँ, मिलेगा।'

'मैंने बड़ी तपस्या की है; अतएव बड़ा भारी वरदान माँगूँगी।'

'क्या लेगी ? कुबेर का धन ?'

'नहीं।'

'इन्द्र का बल ?'

'नहीं।'

'सरस्वती की विद्या ?'

'नहीं।'

'फिर क्या लेगी ?'

'संसार का सबसे उत्तम पदार्थ।'

'वह क्या है ?'

'सपूत बेटा।'

'जो कुल का नाम रोशन करे ?'

'नहीं।'

'जो माता-पिता की सेवा करे ?'

'नहीं।'

'जो विद्वान् और बलवान् हो?'

'नहीं।'

'फिर सपूत बेटा किसे कहते हैं?'

'जो अपने देश का उपकार करे।'

'तेरी बुद्धि को धन्य है! जा, तेरी इच्छा पूरी

---

[२]

वैराग्य

मुंशी शालिग्राम बनारस के पुराने रईस थे। जीवन-वृत्ति वकालत थी और पैतृक सम्पत्ति भी अधिक थी। दशाश्वमेध घाट पर उनका वैभवान्वित गृह आकाश को स्पर्श करता था। उदार ऐसे कि पचीस-तीस हज़ार की वार्षिक आय भी व्यय को पूरी न होती थी। साधु-ब्राह्मणों के बड़े श्रद्धावान् थे। वे जो कुछ कमाते, वह स्वयं ब्रह्मभोज और साधुओं के भण्डारे एवं सत्कार्य में व्यय हो जाता। नगर में कोई साधु-महात्मा आ जाय, वह मुन्शीजी का अतिथि। संस्कृत के ऐसे विद्वान् कि बड़े-बड़े पंडित उनका लोहा मानते थे। वेदान्तीय सिद्धान्तों के वे अनुयायी थे। उनके चित्त की प्रवृत्ति वैराग्य की ओर थी।

मुन्शीजी को स्वभावतः बच्चों से बहुत प्रेम था। मुहल्ले-भर के बच्चे उनके प्रेम-वारि से अभिसिञ्चित होते रहते थे। जब वे घर से निकलते थे तब बालकों का एक दल उनके साथ होता था। एक दिन कोई पाषाण-हृदया माता अपने बच्चे को मार रही थी। लड़का बिलख-बिलखकर रो रहा था। मुन्शीजी से न रहा गया। दौड़े, बच्चे को गोद में उठा लिया और स्त्री के सम्मुख अपना सिर झुका दिया। स्त्री ने उस दिन से अपने लड़के को मारने की शपथ खा ली। जो मनुष्य दूसरों के बालकों का ऐसा

स्नेही हो, वह अपने बालक को कितना प्यार करेगा, सो अनुमान से बाहर है। जब से पुत्र पैदा हुआ, मुन्शीजी संसार के सब कार्यों से अलग हो गये। कहीं वे लड़के को हिंडोले में झुला रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। कहीं वे उसे एक सुन्दर सैरगाड़ी में बैठाकर स्वयं खींच रहे हैं। एक क्षण के लिए भी वे उसे अपने पास से दूर नहीं करते थे। वे बच्चे के स्नेह में अपने को भूल गये थे।

सुवामा ने लड़के का नाम प्रतापचन्द्र रखा था। जैसा नाम था वैसे ही उसमें गुण भी थे। वह अत्यन्त प्रतिभाशाली और रूपवान् था। जब वह बातें करता, सुननेवाले मुग्ध हो जाते। भव्य ललाट दमक-दमक करता था। अङ्ग ऐसे पुष्ट कि द्विगुण डीलवाले लड़कों को भी वह कुछ न समझता था। इस अल्प आयु ही में उसका मुखमण्डल ऐसा दिव्य और ज्ञानमय था कि यदि वह अचानक किसी अपरिचित मनुष्य के सामने आकर खड़ा हो जाता तो वह विस्मय से ताकने लगता था।

इस प्रकार हँसते-खेलते छः वर्ष व्यतीत हो गये। आनन्द के दिन पवन की भाँति सन्न से निकल जाते हैं और पता भी नहीं चलता। वे दुर्भाग्य के दिन और विपत्ति की रातें हैं, जो काटे नहीं कटतीं। प्रताप को पैदा हुए अभी कितने दिन हुए! बधाई की मनोहारिणी ध्वनि कानों में गूँज रही थी कि छठी वर्षगाँठ आ पहुँची। छठे वर्ष का अन्त दुर्दिनों का श्रीगणेश था। मुन्शी शालिग्राम का सांसारिक सम्बन्ध केवल दिखावटी था। वह निष्काम और निस्सम्बद्ध जीवन व्यतीत करते थे। यद्यपि प्रकट वह सामान्य संसारी मनुष्यों की भाँति संसार के क्लेशों से क्लेशित और सुखों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे, तथापि उनका मन सर्वदा उस महान् और आनन्दपूर्ण शान्ति का सुख-भोग करता था, जिस पर दुःख के झोंकों और सुख की थपकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

माघ का महीना था। प्रयाग में कुम्भ का मेला लगा हुआ था। रेलगाड़ियों में यात्री रुई की भाँति भर-भरकर प्रयाग पहुँचाये जाते थे। अस्सी-

अस्सी बरस के वृद्ध—जिनके लिए वर्षों से उठना कठिन हो रहा था—लॅगड़ाते, लाठियाँ टेकते मञ्जिलें तै करके प्रयागराज को जा रहे थे। बड़े-बड़े साधु-महात्मा—जिनके दर्शनों की इच्छा लोगों को हिमालय की अँधेरी गुफाओं मे खींच ले जाती थी—उस समय गंगाजी की पवित्र तरंगों से गले मिलने के लिए आये हुए थे। मुंशी शालिग्राम का भी मन ललचाया सुवामा से बोले—'कल स्नान है।'

सुवामा—सारा महल्ला सूना हो गया। कोई मनुष्य नहीं दीखता।

मुंशी—तुम चलना स्वीकार नहीं करतीं, नहीं तो बड़ा आनन्द होता। ऐसा मेला तुमने कभी नहीं देखा होगा।

सुवामा—ऐसे मेलों से मेरा जी घबराता है।

मुंशी—मेरा तो जी नहीं मानता। जबसे सुना कि स्वामी परमानन्दजी आये हैं, तबसे उनके दर्शन के लिए चित्त उद्विग्न हो रहा है।

सुवामा पहले तो उनके जाने पर सहमत न हुई, पर जब देखा कि यह रोके न रुकेंगे, तब विवश होकर मान गयी। उसी दिन मुंशीजी ग्यारह बजे रात को प्रयागराज चले गये। चलते समय उन्होंने प्रताप के मुख का चुम्बन किया और स्त्री को प्रेम से गले लगा लिया। सुवामा ने उस समय देखा कि उनके नेत्र सजल हैं। उसका कलेजा धक्-से हो गया। जैसे चैत्र मास में काली-काली घटाओं को देखकर कृषक का हृदय काँपने लगता है, उसी भाँति मुंशीजी के नेत्रों को अश्रुपूर्ण देखकर सुवामा कम्पित हुई, अश्रु की वे बूँदें वैराग्य और त्याग का अगाध समुद्र थीं। देखने मे वे जैसे नन्हें जल के कण थीं, पर थीं वे कितनी गम्भीर और विस्तीर्ण!

उधर मुन्शीजी घर से बाहर निकले और इधर सुवामा ने एक ठण्ढी श्वास ली। किसी ने उसके हृदय में यह कहा कि अब तुझे अपने पति के दर्शन न होंगे। एक दिन बीता, दो दिन बीते, चौथा दिन आया और गत हो गया, यहाँ तक कि पूरा सप्ताह बीत गया, पर मुन्शीजी न आये। तब तो सुवामा को आकुलता होने लगी। तार दिये। आदमी दौड़ाये, पर

कुछ पता न चला। दूसरा सप्ताह भी इसी प्रयत्न में समाप्त हो गया। मुन्शीजी के लौटने की जो कुछ आशा शेष थी, वह सब मिट्टी में मिल गयी। मुन्शीजी का अदृश्य होना उनके कुटुम्ब मात्र के लिए ही नहीं, वरन् सारे नगर के लिए एक शोकपूर्ण घटना थी। हाटों में, दूकानों पर, हथाइयों में अर्थात् चारों ओर यही वार्तालाप होता था। जो सुनता, वही शोक करता—क्या धनी, क्या निर्धन। यह शोक सबको था। उनके कारण चारों ओर उत्साह फैला रहता था। अब एक उदासी छा गयी। जिन गलियों से वे बालकों का झुण्ड लेकर निकलते थे, वहाँ अब धूल उड़ रही थी। बच्चे बराबर उनके पास आने के लिए रोते और हठ करते थे। उन बेचारों को यह सुध कहाँ थी कि अब प्रमोद-सभा भग हो गयी है। उनकी माताएँ आँचल से मुख ढाँप-ढाँपकर रोतीं, मानो उनका सगा प्रेमी मर गया है।

वैसे तो मुन्शीजी के गुप्त हो जाने का रोना सभी रोते थे। परन्तु सबसे गाढे आँसू उन आढतियों और महाजनों के नेत्रों से गिरते थे, जिनके लेन-देन का लेखा अभी नहीं हुआ था। उन्होंने दस-बारह दिन जैसे-तैसे करके काटे, पश्चात् एक-एक करके लेखा के पत्र दिखाने लगे। किसी ब्रह्मभोज में दो सौ रुपये का घी आया है और मूल्य नहीं दिया गया, कहीं से दो सौ का मैदा आया हुआ है; बजाज का सहस्रों का लेखा है। मन्दिर बनवाते समय एक महाजन से बीस सहस्र ऋण लिया गया था, वह अभी वैसे ही पड़ा हुआ है। लेखा की तो यह दशा थी। सामग्री की यह दशा कि एक उत्तम गृह और तत्सम्बन्धिनी सामग्रियों के अतिरिक्त कोई वस्तु न थी, जिससे कोई बड़ी रकम खड़ी हो सके। भू-सम्पत्ति बेचने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था, जिससे धन प्राप्त करके ऋण चुकाया जाय।

बेचारी सुवामा सिर नीचा किये हुए चटाई पर बैठी हुई थी और प्रतापचन्द्र अपने लकड़ी के घोड़े पर सवार आँगन में टख-टख कर रहा

था कि पण्डित मोटेराम शास्त्री—जो कुल के पुरोहित थे—मुसकुराते हुए भीतर आये। उन्हें प्रसन्न देखकर निराश सुवामा चौंककर उठ बैठी कि शायद यह कोई शुभ समाचार लाये हैं। उनके लिए आसन बिछा दिया और आशा-भरी दृष्टि से देखने लगी। पण्डितजी आसन पर बैठे और सुँघनी सूँघते हुए बोले—तुमने महाजनों का लेखा देखा?

सुवामा ने निराशा-पूर्ण शब्दों में कहा—हाँ, देखा तो।

मोटेराम—रकम बड़ी गहरी है। मुन्शीजी ने आगा-पीछा कुछ न सोचा, अपने यहाँ कुछ हिसाब-किताब न रखा।

सुवामा—हाँ, अब तो यह रकम गहरी है, नहीं तो इतने-इतने रुपए क्या, एक-एक भोज में उठ गये हैं।

मोटेराम—सब दिन समान नहीं बीतते।

सुवामा—अब तो जो ईश्वर करेगा सो होगा, मैं क्या कर सकती हूँ?

मोटेराम—हाँ, ईश्वर की इच्छा तो मूल ही है, मगर तुमने भी कुछ सोचा है?

सुवामा—हाँ, गाँव बेच डालूँगी।

मोटेराम—राम-राम! यह क्या कहती हो? भूमि बिक गयी, तो फिर बात क्या रह जायेगी?

सुवामा—इसके सिवाय अब अन्य उपाय नहीं है।

मोटेराम—भला, पृथ्वी हाथ से निकल गयी, तो तुम लोगों का जीवन-निर्वाह कैसे होगा?

सुवामा—हमारा ईश्वर मालिक है। वही बेड़ा पार करेगा।

मोटेराम—यह तो बड़े अफसोस की बात होगी कि ऐसे उपकारी पुरुष के लड़के-बाले दुःख भोगेंगे।

सुवामा—ईश्वर की यही इच्छा है, तो किसी का क्या वश?

मोटेराम—भला, मैं एक युक्ति बता दूँ कि साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

सुवामा—हाँ, बतलाइए, बड़ा उपकार होगा।

मोटेराम—पहिले तो एक दरख्वास्त लिखवाकर कलक्टर साहिब को को दे दो कि मालगुजारी माफ़ की जाय। बाकी रुपये का बन्दोबस्त हमारे ऊपर छोड़ दो। हम जो चाहेंगे करेंगे, परन्तु इलाके पर आँच न आने पायेगी।

सुवामा—कुछ प्रकट भी तो हो, आप इतने रुपये कहाँ से लायेंगे?

मोटेराम—तुम्हारे लिए रुपये की क्या कमी है? मुन्शीजी के नाम पर बिना लिखा-पढी के पचास हजार रुपये का बन्दोबस्त हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। सच तो यह है कि रुपया रखा हुआ है;-तुम्हारे मुँह से 'हाँ' निकलने की देर है।

सुवामा—नगर के भद्र पुरुषों ने एकत्र किया होगा?

मोटेराम—हाँ, बात-की-बात में रुपया एकत्र हो गया। साहब का इशारा बहुत था।

सुवामा—कर-मुक्ति के लिए प्रार्थना-पत्र मुझसे न लिखवाया जायगा और न मैं अपने स्वामी के नाम पर ऋण ही लेना चाहती हूँ। मैं सबका एक-एक पैसा अपने गाँवों ही से चुका दूँगी।

यह कहकर सुवामा ने रुखाई से मुँह फेर लिया और उसके पीले तथा शोकान्वित वदन पर क्रोध-सा झलकने लगा। मोटेराम ने देखा कि बात बिगड़ना चाहती है, तो सँभलकर बोले—अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। मगर यदि हमने तुमको किसी प्रकार का दु ख उठाते देखा, तो उस दिन प्रलय हो जायगा। बस, इतना समझ लो!

सुवामा—तो आप क्या यह चाहते हैं कि मैं अपने पति के नाम पर दूसरों की कृतज्ञता का भार रखूँ? मैं इसी घर में जल मरूँगी, अनशन करते-करते मर जाऊँगी, पर किसी की उपकृत न बनूँगी।

मोटेराम—छि! छि! तुम्हारे ऊपर निहोरा कौन कर सकता है? कैसी बात मुख से निकालती हो? ऋण लेने में कोई लाज नहीं है। कौन

रईस है जिस पर लाख-दो-लाख का ऋण न हो ?

सुवामा—मुझे विश्वास नहीं होता कि इस ऋण में निहोरा नहीं है।

मोटेराम—सुवामा, तुम्हारी बुद्धि कहाँ गयी ? भला, तुम सब प्रकार के दुःख उठा लोगी ? पर क्या तुम्हें इस बालक पर दया नहीं आती ?

मोटेराम की यह चोट बहुत कड़ी लगी। सुवामा सजलनयना हो गई। उसने पुत्र की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखा। इस बच्चे के लिए मैंने कौन-कौन सी तपस्या नहीं की ? क्या उसके भाग्य में दुःख ही बदा है ? जो अमोला जल-वायु के प्रखर झोंकों से बचाया जाता था, जिस पर सूर्य की प्रचण्ड किरणें न पड़ने पाती थीं, जो स्नेह-सुधा से अभिषिंचित रहता था, क्या वह आज इस जलती हुई धूप और इस आग की लपट में मुरझायेगा ? सुवामा कई मिनट तक इसी चिन्ता में बैठी रही। मोटेराम मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि अब सफलीभूत हुआ। इतने में सुवामा ने सिर उठाकर कहा—जिसके पिता ने लाखों को जिलाया-खिलाया, वह दूसरों का आश्रित नहीं बन सकता। यदि पिता का धर्म उसका सहायक होगा, तो वह स्वयं दस को खिलाकर खायेगा। (लड़के को बुलाते हुए) बेटा ! तनिक यहाँ आओ। कल से तुम्हारी मिठाई, दूध, घी सब बन्द हो जायेंगे। रोओगे तो नहीं ? यह कहकर उसने बेटे को प्यार से गोद में बैठा लिया और उसके गुलाबी गालों का पसीना पोंछकर चुम्बन कर लिया।

प्रताप—क्या कहा ? कल से मिठाई बन्द होगी ! क्यों ? क्या हलवाई की दूकान पर मिठाई नहीं है ?

सुवामा—मिठाई तो है, पर उसका रुपया कौन देगा ?

प्रताप—हम बड़े होंगे, तो उसको बहुत-सा रुपया देंगे। चल, टख ! टख ! देख माँ, कैसा तेज घोड़ा है !

सुवामा की आँखों में फिर जल भर आया। 'हा हन्त ! इस सौन्दर्य और सुकुमारता की मूर्ति पर अभी से दरिद्रता की आपत्तियाँ आ जायेंगी। नहीं, नहीं, मैं स्वयं सब भोग लूँगी। परन्तु अपने प्राणप्यारे बच्चे के ऊपर

आपत्ति की परछाहीं तक न आने दूँगी।' माता तो यह सोच रही थी और प्रताप अपने हठी और मुँहजोर घोड़े पर चढ़ने में पूर्ण शक्ति से लीन हो रहा था। बच्चे मन के राजा होते हैं।

अभिप्राय यह कि मोटेराम ने बहुत जाल फैलाया। विविध प्रकार का वाक्चातुर्य दिखलाया, परन्तु सुवामा ने एक बार 'नहीं' करके 'हाँ' न की। उसकी इस आत्मरक्षा का समाचार जिसने सुना, धन्य-धन्य कहा। लोगों के हृदय में उसकी प्रतिष्ठा दूनी हो गयी। उसने वही किया, जो ऐसे सन्तोषपूर्ण और उदार-हृदय मनुष्य की स्त्री को करना उचित था।

इसके पन्द्रहवें दिन इलाका नीलाम पर चढ़ा। पचास सहस्र रुपये प्राप्त हुए। कुल ऋण चुका दिया गया। घर का अनावश्यक सामान बेच दिया गया। मकान में भी सुवामा ने भीतर से ऊँची-ऊँची दीवारें खिंचवा कर दो अलग-अलग खण्ड कर दिये। एक में आप रहने लगी और दूसरा भाड़े पर उठा दिया।

---

[३]

नये पड़ोसियों से मेल-जोल

मुन्शी सजीवनलाल—जिन्होंने सुवामा का घर भाड़े पर लिया था—बड़े विचारशील मनुष्य थे। पहले एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे, किन्तु अपनी स्वतन्त्र इच्छा के कारण अफसरों को प्रसन्न न रख सके। यहाँ तक कि उनकी रुष्टता से विवश होकर इस्तीफा दे दिया। नौकरी के समय में कुछ पूँजी एकत्र कर ली थी, इसलिए नौकरी छोड़ते ही वे ठेकेदारी की ओर प्रवृत्त हुए और उन्होंने परिश्रम द्वारा अल्प काल ही में अच्छी सम्पत्ति बना ली। इस समय उनकी आय चार-पाँच सौ मासिक से कम न थी। उन्होंने कुछ ऐसी अनुभवशालिनी बुद्धि पायी थी कि जिस कार्य में हाथ डालते, उसमें लाभ छोड़ हानि न होती थी।

मुन्शी सञ्जीवनलाल का कुटुम्ब बड़ा न था। सन्तानें तो ईश्वर ने कई दीं, पर इस समय माता-पिता के नयनों की पुतली केवल एक पुत्री ही थी। उसका नाम 'वृजरानी' था। वही दम्पति का जीवनाश्रय थी।

प्रतापचन्द्र और वृजरानी में पहले ही दिन से मैत्री आरम्भ हो गयी। आध घण्टे मे दोनों चिड़ियों की भाँति चहकने लगे। विरजन ने अपनी गुड़िया, खिलौने और बाजे दिखाये; प्रतापचन्द्र ने अपनी किताबें, लेखनी और चित्र दिखाये। विरजन की माता सुशीला ने प्रतापचन्द्र को गोद मे ले लिया और प्यार किया। उस दिन से वह नित्य सन्ध्या को आता और दोनों साथ-साथ खेलते। ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों भाई-बहिन हैं। सुशीला दोनों बालकों को गोद में बैठाती और प्यार करती। घण्टों टकटकी लगाये दोनों बच्चों को देखा करती, विरजन भी कभी-कभी प्रताप के घर जाती। विपत्ति की मारी सुवामा उसे देखकर अपना दुःख भूल जाती, छाती से लगा लेती और इसकी भोली-भाली बातें सुनकर अपना मन बहलाती।

एक दिन मुन्शी सञ्जीवनलाल बाहर से आये तो क्या देखते हैं कि प्रताप और विरजन दोनो दफ्तर में कुर्सियों पर बैठे हैं। प्रताप कोई पुस्तक पढ़ रहा है और विरजन ध्यान लगाये सुन रही है। दोनो ने ज्योंही मुन्शी जी को देखा उठ खड़े हुए। विरजन तो दौड़कर पिता की गोद मे जा बैठी और प्रताप सिर नीचा करके एक ओर खड़ा हो गया। कैसा गुणवान् बालक था! आयु अभी आठ वर्ष से अधिक न थी; परन्तु लक्षण से भावी प्रतिभा झलक रही थी। दिव्य मुखमण्डल, पतले-पतले लाल-लाल अधर, तिव्र चितवन, काले-काले भ्रमर के समान बाल, उस पर स्वच्छ कपड़े। मुन्शीजी ने कहा—यहाँ आओ, प्रताप!

प्रताप धीरे-धीरे कुछ हिचकिचाता-सकुचाता समीप आया। मुन्शीजी ने पितृवत् प्रेम से उसे गोद मे बैठा लिया और पूछा—तुम अभी कौन-सी किताब पढ़ रहे थे?

प्रताप बोलने ही को था कि विरजन बोल उठी—बाबा ! अच्छी-अच्छी कहानियाँ थी। क्यों बाबा ! क्या पहले चिड़ियाँ भी हमारी भाँति बातें करती थीं ?

मुन्शीजी मुस्कराकर बोले—हाँ ! वे खूब बोलती थीं।

अभी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पायी थी कि प्रताप, जिसका सकोच अब गायब हो चला था, बोला—नहीं विरजन, तुम्हें भुलाते हैं। ये कहानियाँ बनायी हुई है। मुन्शीजी इस निर्भीकतापूर्ण खण्डन पर खूब हँसे।

अब तो प्रताप तोते की भाँति चहकने लगा—स्कूल इतना बड़ा है नगर-भर के लोग उसमें बैठ जायें। दीवारें इतनी ऊँची हैं, जैसे ताड़। बलदेवप्रसाद ने जो गेंद में हिट लगायी, तो वह आकाश मे चला गया। बड़े मास्टर साहब की मेज पर हरी-हरी बनात बिछी हुई है। उस पर फूलों से भरे गिलास रखे हैं। गगाजी का पानी नीला है। ऐसे जोर से बहता है कि बीच में पहाड़ भी हो, तो बह जाय। वहाँ एक साधु बाबा हैं। रेल दौड़ती है सन-सन। उसका इञ्जिन बोलता है भक-भक। इञ्जिन में भाप होती है, उसी के जोर से गाड़ी चलती है। गाड़ी के साथ पेड़ भी दौड़ते दिखायी देते हैं।

इस भाँति कितनी ही बातें प्रताप ने अपनी भोली-भोली बोली में कहीं। विरजन चित्र की भाँति चुपचाप बैठी हुई सुन रही थी। रेल पर वह भी-दो तीन बार सवार हुई थी। परन्तु उसे आज तक यह न ज्ञात था कि उसे किसने बनाया और वह क्योंकर चलती है। दो बार उसने गुरुजी से यह प्रश्न किया था, परन्तु उन्होंने यही कह कर टाल दिया कि बच्चा, ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। विरजन ने भी समझ रखा कि ईश्वर की महिमा कोई बड़ा भारी और बलवान घोड़ा है, जो इतनी गाड़ियों को सन-सन खींचे लिये जाता है। जब प्रताप चुप हुआ तो विरजन ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा—बाबा ! हम भी प्रताप की किताब पढ़ेंगे।

मुन्शी—बेटी, तुम तो संस्कृत पढ़ती हो, यह तो भाषा है।

विरजन—तो मैं भी भाषा ही पढ़ूँगी। इसमें कैसी अच्छी-अच्छी कहानियाँ हैं। मेरी किताब में तो एक भी कहानी नहीं। क्यों बाबा, पढ़ना किसे कहते हैं?

मुन्शीजी बगलें झाँकने लगे। इन्होंने आज तक आप ही कभी ध्यान नहीं दिया था कि पढ़ना क्या वस्तु है? अभी वे माथा ही खुजला रहे थे कि प्रताप बोल उठा—मुझे तुमने पढ़ते देखा, उसीको पढ़ना कहते हैं।

विरजन—क्या मैं नहीं पढ़ती? मेरे पढ़ने को पढ़ना नहीं कहते?

विरजन सिद्धान्तकौमुदी पढ़ रही थी। प्रताप ने कहा—तुम तोते की भाँति रटती हो।

---

[४]

एकता का सम्बन्ध पुष्ट होता है

कुछ काल से सुवामा ने द्रव्याभाव के कारण महाराजिन, कहार और दो महरियों को जवाब दे दिया था, क्योंकि अब न तो उनकी कोई आवश्यकता थी और न उनका व्यय ही सँभाले सँभलता था। केवल एक बुढ़िया महरी शेष रह गयी थी। ऊपर का कामकाज वह करती, रसोई सुवामा स्वयं बना लेती। परन्तु उस बेचारी को ऐसे कठिन परिश्रम का अभ्यास तो कभी था नहीं, थोड़े ही दिनों में उसे थकान के कारण रात को कुछ ज्वर रहने लगा। धीरे-धीरे यह गति हुई कि जब देखिए ज्वर विद्यमान है। शरीर भुना जाता है, न खाने की इच्छा है, न पीने की। किसी कार्य में मन नहीं लगता। पर यह है कि सदैव नियम के अनुसार काम किये जाती है जब तक प्रताप घर रहता है, तब तक वह मुखाकृति को तनिक भी मलिन नहीं होने देती। परन्तु ज्योंही वह स्कूल चला जाता है, त्योंही वह चद्दर ओढ़कर पड़ रहती है और दिन भर पड़े-पड़े कराहा करती है।

प्रताप बुद्धिमान् लड़का था। माता की दशा प्रतिदिन बिगड़ती हुई देखकर ताड़ गया कि यह बीमार है। एक दिन स्कूल से लौटा, तो सीधा अपने घर गया। बेटे को देखते ही सुवामा ने उठ बैठने का प्रयत्न किया, पर निर्बलता के कारण मूर्छा आ गयी और हाथ-पाँव अकड़ गये। प्रताप ने उसे सँभाला और उसकी ओर भर्त्सना की दृष्टि से देखकर कहा—अम्माँ, तुम आजकल बीमार हो गया? इतनी दुबली क्यों हो गयी हो? देखो, तुम्हारा शरीर कितना गर्म है? हाथ नहीं रखा जाता।

सुवामा ने हँसने का उद्योग किया। अपनी बीमारी का परिचय देकर बेटे को कैसे कष्ट दे? यह निःस्पृह और निःस्वार्थ प्रेम की पराकाष्ठा है। स्वर को हलका करके बोली—नहीं बेटा, बीमार तो नहीं हूँ। आज कुछ ज्वर हो आया था, सन्ध्या तक चङ्गी हो जाऊँगी। अलमारी में हलुआ रखा हुआ है, निकाल लो। नहीं, तुम आओ, बैठो, मैं ही निकाल देती हूँ।

प्रताप—माता, तुम मुझसे बहाना करती हो। तुम अवश्य बीमार हो। एक दिन में कोई इतना दुर्बल हो जाता है?

सुवामा—(हँसकर) क्या तुम्हारे देखने में मैं दुबली हो गयी हूँ? मुझे तो नहीं जान पड़ता।

प्रताप—मैं डाक्टर साहब के पास जाता हूँ।

सुवामा—(प्रताप का हाथ पकड़कर) तुम क्या जानो कि वे कहाँ रहते हैं?

प्रताप—पूछते-पूछते चला जाऊँगा।

सुवामा कुछ और कहना चाहती थी कि उसे फिर चक्कर आ गया। उसकी आँखें पथरा गयीं। प्रताप उसकी यह दशा देखते ही डर गया। उससे और कुछ तो न हो सका, वह दौड़कर विरजन के द्वार पर आया और खड़ा होकर रोने लगा।

प्रतिदिन वह इस समय तक विरजन के घर पहुँच जाता था। आज जो देर हुई तो वह अकुलायी हुई इधर-उधर देख रही थी। अकस्मात्

द्वार पर झाँकने आयी, तो प्रताप को दोनों हाथों से मुख ढाँके हुए देखा। पहले तो समझी कि इसने हँसी से मुख छिपा रखा है। पर जब उसने हाथ हटाये तो आँसू दीख पड़े। चौंककर बोली—लल्लू! क्यों रोते हो? बता दो।

प्रताप ने कुछ उत्तर न दिया, वरन् और सिसकने लगा।

विरजन बोली—न बताओगे! क्या चाची ने कुछ कहा है? जाओ, तुम चुप नहीं होते।

प्रताप ने कहा—नहीं विरजन, माँ बहुत बीमार है।

यह सुनते ही वृजरानी दौड़ी और एक साँस में सुवामा के सिरहाने जा खड़ी हुई। देखा तो वह सुन्न हुई पड़ी है, आँखें मुँदी हुई हैं और लम्बी साँसें ले रही है। उसका हाथ थामकर विरजन झिंझोरने लगी; 'चची! कैसा जी है? आँखें खोलो; कैसा जी है?'

परन्तु चची ने आँखें न खोलीं। तब वह ताक पर से तेल उतारकर सुवामा के सिर पर धीरे-धीरे मलने लगी। उस वेचारी को सिर में महीनों से तेल डालने का अवसर न मिला था; ठण्ढक पहुँची तो आँखें खुल गयीं।

विरजन—चची! कैसा जी है? कहीं दर्द तो नहीं है?

सुवामा—नहीं वेटी, दर्द कहीं नहीं है। अब मैं बिलकुल अच्छी हूँ। भैया कहाँ है?

विरजन—वह तो मेरे घर हैं, बहुत रो रहे हैं।

सुवामा—तुम जाओ, उसके साथ खेलो। अब मैं बिलकुल अच्छी हूँ।

अभी ये बातें हो रही थी कि सुशीला का भी शुभागमन हुआ। उसे सुवामा से मिलने की तो बहुत दिनों से उत्कण्ठा थी, परन्तु कोई अवसर न मिलता था। इस समय वह सान्त्वना देने के बहाने से आ पहुँची। विरजन ने अपनी माता को देखा तो उछल पड़ी और ताली बजा-बजाकर कहने लगी—मा आयी; मा आयी।

दोनों स्त्रियों में शिष्टाचार की बातें होने लगीं। बातों-बातों में दीपक

जल उठा। किसी को ध्यान भी न हुआ कि प्रताप कहाँ है। थोड़ी देर तक तो वह द्वार पर खड़ा रोता रहा, फिर झटपट आँखें पोंछकर डाक्टर किचलू के घर की ओर लपकता हुआ चला। डाक्टर साहब मुन्शी शालिग्राम के मित्रों में से थे। और जब कभी काम पड़ता, तो वे ही बुलाये जाते थे। प्रताप को केवल इतना विदित था कि वे बरना नदी के किनारे लाल बँगले में रहते हैं। उसे अब तक अपने महल्ले से बाहर निकलने का कभी अवसर न पड़ा था। परन्तु उस समय मातृभक्ति के वेग से उद्विग्न होने के कारण उसे इन रुकावटों का कुछ भी ध्यान न हुआ। घर से निकलकर बाज़ार में आया और एक इक्केवान से बोला—'लाल बँगले चलोगे?' लाल बँगला प्रसिद्ध स्थान था। इक्कावान तैयार हो गया। आठ बजते-बजते डाक्टर साहब की फिटन सुवामा के द्वार पर आ पहुँची। यहाँ इस समय चारों ओर उसकी खोज हो रही थी कि अचानक वह सवेग पैर बढ़ाता हुआ भीतर गया और बोला—पर्दा करो। डाक्टर साहब आते हैं।

सुवामा और सुशीला दोनों चौंक पड़ीं। समझ गयीं, यह डॉक्टर साहब को बुलाने गया था। सुवामा ने प्रेमाधिक्य से उसे गोदी में बैठा लिया और नेत्रों में आँसू भरकर पूछा—क्या अकेले चले गये थे? तुम्हें रास्ता कैसे मालूम हुआ? डर नहीं लगा? हमको बतलाया भी नहीं, यों ही चले गये? तुम खो जाते तो मैं क्या करती? ऐसा लाल कहाँ पाती? यह कहकर उसने बेटे को बार-बार चूम लिया। प्रताप इतना प्रसन्न था, मानो परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है। थोड़ी देर में पर्दा हुआ और डॉक्टर साहब आये। उन्होंने सुवामा की नाड़ी देखी और सान्त्वना दी। वे प्रताप को गोद में बैठाकर बातें करते रहे। औषध साथ लेते आये थे। उसे पिलाने की सम्मति देकर नौ बजे बँगले को लौट गये। परन्तु जीर्णज्वर था, अतएव पूरे मास-भर सुवामा को कड़वी-कड़वी औषधियाँ खानी पड़ीं। डाक्टर साहब दोनों वक्त आते और ऐसी कृपा और ध्यान रखते, मानो सुवामा उनकी बहिन है। एक बार सुवामा ने डरते-डरते फीस के रुपये

एक पात्र में रखकर सामने रखे। पर डॉक्टर साहब ने उन्हें हाथ तक न लगाया। केवल इतना कहा—इन्हें मेरी ओर से प्रताप को दे दीजिएगा। वह पैदल स्कूल जाता है, पैरगाड़ी मोल ले लेगा।

विरजन और उसकी माता दोनों सुवामा की शुश्रूषा के लिए उपस्थित रहतीं। माता चाहे विलम्ब भी कर जाय, परन्तु विरजन वहाँ से एक क्षण के लिए भी न टलती। दवा पिलाती, पान देती। जब सुवामा का जी अच्छा होता तो वह भोली-भोली बातों द्वारा उसका मन बहलाती। खेलना-कूदना सब छूट गया। जब सुवामा बहुत हठ करती, तो प्रताप के संग बाग में खेलने चली जाती। दीपक लगते ही फिर आ बैठती और जब तक निद्रा के मारे झुक-झुक न पड़ती, वहाँ से उठने का नाम न लेती वरन् प्राय वहीं सो जाती। रात को नौकर गोद में उठाकर घर ले जाता। न जाने उसे ऐसी कौन सी धुन सवार हो गयी थी।

एक दिन वृजरानी सुवामा के सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। न जाने किस ध्यान में मग्न थी। आँखें दीवार की ओर लगी हुई थीं। और जिस प्रकार वृक्षों पर कौमुदी लहराती है, उसी भाँति भीनी-भीनी मुसकान उसके अधरों पर लहरा रही थी। उसे कुछ भी ध्यान न था कि चची मेरी ओर देख रही हैं। अचानक उसके हाथ से पंखा छूट पड़ा। ज्योंही वह उसके उठाने के लिए झुकी कि सुवामा ने उसे गले लगा लिया और पुचकारकर पूछा—विरजन, सत्य कहो, तुम अभी क्या सोच रही थीं?

विरजन ने माथा झुका लिया और कुछ लज्जित होकर कहा—'कुछ नहीं, तुमको न बतलाऊँगी।'

सुवामा—मेरी अच्छी विरजन! बता दो, क्या सोचती थी?

विरजन—(लजाते हुए) सोचती थी कि··· जाओ हँसो मत··· न बतलाऊँगी।

सुवामा—अच्छा ले, न हँसूँगी, बताओ। ले, यही तो अब अच्छा नहीं लगता, फिर मैं आँखें मूँद लूँगी।

विरजन—किसी से कहोगी तो नहीं ?

सुवामा—नहीं, किसी से न कहूँगी।

विरजन—सोचती थी कि जब प्रताप से मेरा विवाह हो जायगा,, तब बड़े आनन्द से रहूँगी।

सुवामा ने उसे छाती से लगा लिया और कहा—'बेटी, वह तो तेरा भाई है।'

विरजन—हाँ, भाई है। मैं जान गयी। तुम मुझे बहू न बनाओगी।

सुवामा–आज लल्लू को आने दो, उससे पूछूँ; देखूँ, क्या कहता है?

विरजन—नहीं-नहीं, उनसे न कहना; मैं तुम्हारे पैरों पड़ूँ।

सुवामा—मैं तो कह दूँगी।

विरजन—तुम्हें हमारी कसम, उनको न कहना।

---

[५]

शिष्ट जीवन के दृश्य

दिन जाते देर नहीं लगती। दो वर्ष व्यतीत हो गये। पण्डित मोटे राम नित प्रातःकाल आते और सिद्धान्त-कौमुदी पढ़ाते, परन्तु अब उनका आना केवल नियम पालने के हेतु ही था; क्योंकि इस पुस्तक के पढ़ने में अब विरजन का जी न लगता था। एक दिन मुन्शीजी इञ्जीनियर के दफ़्तर से आये। कमरे में बैठे थे। नौकर जूते का फीता खोल रहा था कि रधिया महरी मुसकराती हुई घर में से निकली और उनके हाथ में मुहर छाप लगा हुआ लिफाफा रख, मुख फेर हँसने लगी। श्रीनाम पर लिखा हुआ था—'श्रीमान् बाबा साहब की सेवा में प्राप्त हो।'

मुन्शी—अरे, तू किसका लिफाफा ले आयी? यह मेरा नहीं है।

महरी—सरकार ही का तो है, खोलें तो आप।

मुन्शी—किसने दिया? कोई आदमी बाहर से आया था?

महरी मुसकराती हुई बोली—आप खोलेंगे तो पता चल जायगा।

मुन्शीजी ने विस्मित होकर लिफाफा खोला। उसमें से जो पत्र निकला उसमें यह लिखा हुआ था—

'बाबा को विरजन का प्रणाम और पालागन पहुँचे। यहाँ आपकी कृपा से कुशल-मंगल है। आपका कुशल श्रीविश्वनाथजी से सदा मनाया करती हूँ। मैंने प्रताप से भाषा सीख ली। वे स्कूल से आकर सन्ध्या को मुझे नित्य पढाते हैं। अब आप हमारे लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाइए, क्योंकि पढ़ना ही जीवन का सुख है और विद्या अमूल्य वस्तु है। वेद-पुराण में इसका माहात्म्य लिखा है। मनुष्य को चाहिए कि विद्या-धन तन-मन से एकत्र करे। विद्या से सब दु:ख दूर हो जाते हैं। मैंने कल वैतालपच्चीसी की कहानी चची को सुनायी थी। उन्होंने मुझे एक सुन्दर गुड़िया पुरस्कार में दी है। बहुत अच्छी है। मैं उसका विवाह करूँगी, तब आपसे रुपए लूँगी। मैं अब पण्डितजी से न पढूँगी। मा नहीं जानती कि मैं भाषा पढती हूँ।

आपकी प्यारी
विरजन

प्रशस्ति देखते ही मुन्शीजी के अन्त:करण में गुदगुदी होने लगी। फिर तो उन्होंने एक ही साँस में सारी चिट्ठी पढ डाली। मारे आनन्द के नगे-पाँव हँसते हुए भीतर दौड़े। प्रताप को गोद में उठा लिया, और फिर दोनों बच्चों का हाथ पकड़े हुए सुशीला के पास गये। उसे चिट्ठी दिखा-कर कहा—बूझो, किसकी चिट्ठी है?

सुशीला—लाओ हाथ में दो, देखूँ।

मुन्शीजी—नहीं, वहीं से बैठी-बैठी बताओ, जल्दी!

सुशीला—बूझ जाऊँ तो क्या दोगे?

मुन्शीजी—पचास रुपये दूध के धोये हुए।

सुशीला—पहिले रुपये निकालकर रख दो, नहीं तो मुकर जाओगे।

मुन्शीजी—मुकरनेवाले को कुछ कहता हूँ, अभी रुपये लो, ऐसा कोई टुटपूँजिया समझ लिया है ?

यह कहकर दस रुपये का एक नोट जेब से निकालकर दिखाया।

सुशीला—कितने का नोट है ?

मुन्शीजी—पचास रुपये का, हाथ में लेकर देख लो।

सुशीला—ले लूँगी, कहे देती हूँ।

मुन्शीजी—हाँ-हाँ, ले लेना, पहिले बताओ तो सही।

सुशीला—लल्लू का है, लाइये नोट, अब मैं न मानूँगी। यह कहकर उठी और मुन्शीजी का हाथ थाम लिया।

मुन्शीजी—ऐसा क्या डकैती है ? नोट छीने लेती हो।

सुशीला—वचन नहीं दिया था ? अभी से विचलने लगे।

मुन्शीजी—तुमने बूझा भी, सर्वथा भ्रम में पड़ गयीं।

सुशीला—चलो-चलो; बहाना करते हो, नोट हड़पने की इच्छा है। क्यों लल्लू, तुम्हारी ही चिट्ठी है न ?

प्रताप नीची दृष्टि से मुन्शीजी की ओर देखकर धीरे से बोला—मैंने कहाँ लिखी ?

मुन्शीजी—लजाओ, लजाओ।

सुशीला—वह झूठ बोलता है। उसी की चिट्ठी है, तुम लोग गँठकर आये हो।

प्रताप—मेरी चिट्ठी नहीं है, सच ! विरजन ने लिखी है।

सुशीला चकित होकर बोली—विरजन की ? फिर उसने दौड़कर पति के हाथ से चिट्ठी छीन ली और भौंचक्की होकर उसे देखने लगी; परन्तु अब भी विश्वास न आया। विरजन से पूछा—क्यों बेटी, यह तुम्हारी लिखी है ?

विरजन ने सिर झुकाकर कहा—हाँ ! यह सुनते ही माता ने उसे कण्ठ से लगा लिया।

अब आज से विरजन की यह दशा हो गयी कि जब देखिए, लेखनी

लिए हुए पन्ने काले कर रही है। घर के धन्धों से तो उसे पहिले ही कुछ प्रयोजन न था; लिखने का आना सोने में सोहागा हो गया। माता उसकी तल्लीनता देख-देखकर प्रमुदित होती, पिता हर्ष से फूला न समाता, नित्य नवीन पुस्तकें लाता कि विरजन सयानी होगी तो पढेगी। यदि कभी वह अपने पाँव धो लेती, या भोजन करके अपने ही हाथ धोने लगती, तो माता महरियो पर बहुत क्रुद्ध होती—आँखें फूट गयी हैं। चर्बी छा गयी है। वह अपने हाथ से पानी उँड़ेल रही है और तुम खड़ी मुँह ताक्ती हो!

इसी प्रकार काल बीतता चला गया, विरजन का बारहवाँ वर्ष पूर्ण हुआ, परन्तु अभी तक उसे चावल उबालना तक न आता था। चूल्हे के सामने बैठने का कभी अवसर ही न आया। सुवामा ने एक दिन उसकी माता से कहा-बहिन, विरजन सयानी हुई, क्या कुछ गुन-ढग न सिखाओगी?

सुशीला—क्या कहूँ, जी तो चाहता है कि लग्गा लगाऊँ, परन्तु कुछ सोचकर रुक जाती हूँ।

सुवामा—क्या सोचकर रुक जाती हो?

सुशीला—कुछ नहीं। आलस आ जाती है।

सुवामा—तो यह काम मुझे सौंप दो। भोजन बनाना स्त्रियों के लिए सबसे आवश्यक बात है।

सुशीला—अभी चूल्हे के सामने उससे बैठा न जायगा।

सुवामा—काम करने ही से आता है।

सुशीला—(झेंपते हुए) फूल-से गाल कुम्हला जायेंगे।

सुवामा—(हँसकर) बिना फूल के मुरझाये कहीं फल लगते हैं?

दूसरे दिन से विरजन भोजन बनाने लगी। पहिले दस-पाँच दिन उसे चूल्हे के सामने बैठने में बड़ा कष्ट हुआ। आग न जलती, फूँकने लगती तो नेत्रों से जल बहता। वे बूटी की भाँति लाल हो जाते। चिनगारियों से कई रेशमी साड़ियाँ सत्यानाश हो गयीं हाथों में छाले पड़ गये। परन्तु क्रमश सारे क्लेश दूर हो गये। सुवामा ऐसी सुशीला स्त्री थी कि कभी रुष्ट

न होती। प्रतिदिन उसे पुचकारकर काम में लगाये रहती।

अभी विरजन को भोजन बनाते दो मास से अधिक न हुए होंगे कि एक दिन उसने प्रताप से कहा—लल्लू, मुझे भोजन बनाना आ गया।

प्रताप—सच!

विरजन—कल चची ने मेरा बनाया भोजन किया था। बहुत प्रसन्न हुईं।

प्रताप—तो भई, एक दिन मुझे भी नेवता दो।

विरजन ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, कल।

दूसरे दिन नौ बजे विरजन ने प्रताप को भोजन करने के लिए बुलाया। उसने जाकर देखा तो चौका लगा हुआ है। नवीन मिट्टी की मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही है। आसन स्वच्छता से बिछा हुआ है। एक थाली में चावल और चपातियाँ हैं। दाल और तरकारियाँ अलग-अलग कटोरियों में रखी हुई हैं। लोटा और गिलास पानी से भरे हुए रखे हैं। यह स्वच्छता और ढंग देखकर प्रताप सीधा मुंशी सञ्जीवनलाल के पास गया और उन्हें लाकर चौके के सामने खड़ा कर दिया। मुन्शीजी खुशी से उछल पड़े। चट कपड़े उतार, हाथ-पैर धो प्रताप के साथ चौके में जा बैठे। बेचारी विरजन क्या जानती थी कि ये महाशय भी बिना बुलाये पाहुने हो जायेंगे। उसने केवल प्रताप के लिए भोजन बनाया था। वह उस दिन बहुत लजायी और दबी आँखों से माता की ओर देखने लगी। सुशीला ताड़ गयी। मुसकराकर मुन्शीजी से बोली—तुम्हारे लिए अलग भोजन बना है। लड़कों के बीच में क्या जाके कूद पड़े?

वृजरानी ने लजाते हुए दो थालियों में थोड़ा-थोड़ा भोजन परोसा।

मुंशीजी—विरजन ने चपातियाँ अच्छी बनायी हैं। नर्म, श्वेत और मीठी।

प्रताप—चावल देखिये, छिटक दो और चुन लो।

मुन्शीजी—मैंने ऐसी चपातियाँ कभी नहीं खायीं। सालन बहुत स्वादिष्ट है।

'विरजन! चचा को शोरवेदार आलू दो', यह कहकर प्रताप हँसने

लगा। विरजन ने लजाकर सिर नीचे कर लिया। पतीली शुष्क हो रही थी।

सुशीला—(पति से) अब उठोगे भी, सारी रसोई चट कर गये, तो भी अड़े बैठे हो।

मुन्शीजी—क्या तुम्हारी राल टपक रही है?

निदान दोनों रसोई की इतिश्री करके उठे। मुन्शीजी ने उसी समय एक मोहर निकालकर विरजन को पुरस्कार में दी।

---

[६]

डिप्टी श्यामाचरण

डिप्टी श्यामाचरण की धाक सारे नगर में छायी हुई थी। नगर में कोई ऐसा हाकिम न था जिसकी लोग इतनी प्रतिष्ठा करते हों। इसका कारण कुछ तो यह था कि वे स्वभाव के मिलनसार और सहनशील थे और कुछ यह कि उत्कोच (रिश्वत) से उन्हें बड़ी घृणा थी; न्याय-विचार ऐसी सूक्ष्मता से करते थे कि दस-बारह वर्ष के भीतर कदाचित् उनके दो-ही-चार फैसलों की अपील हुई होगी। अंग्रेजी का एक अक्षर न जानते थे; परन्तु बैरिस्टरों और वकीलों को भी उनकी नैतिक पहुँच और सूक्ष्म-दर्शिता पर आश्चर्य होता था। स्वभाव में स्वाधीनता कूट-कूटकर भरी थी। घर और न्यायालय के अतिरिक्त किसी ने उन्हें और कहीं आते-जाते नहीं देखा। मुन्शी शालिग्राम जब तक जीवित थे, या यों कहिए कि वर्तमान थे, तब तक कभी-कभी चित्तविनोदार्थ उनके यहाँ चले जाते थे। जब से वे लुप्त हो गये, डिप्टी साहब ने घर छोड़कर हिलने की शपथ कर ली। कई वर्ष हुए एक बार कलक्टर साहब को सलाम करने गये थे। खानसामा ने कहा—'साहब स्नान कर रहे हैं। दो घण्टे तक बरामदे में एक मोढ़े पर बैठे प्रतीक्षा करते रहे। तदनन्तर साहब बहादुर हाथ में एक टेनिस बैट लिये हुए निकले और बोले—बाबू साहब, हमको खेद है कि आपको

हमारी बाट देखनी पड़ी। मुझे आज अवकाश नहीं है। क्लब-घर जाना है। आप फिर कभी आवें।

यह सुनकर उन्होंने साहब बहादुर को सलाम किया और इतनीसी बात पर फिर किसी अंग्रेज़ की भेंट को न गये। वंश-प्रतिष्ठा और आत्मगौरव पर उन्हें बड़ा अभि-मान था। वे बड़े ही रसिक पुरुष थे। उनकी बातें हास्य से पूर्ण होती थीं। सन्ध्या के समय जब वे कतिपय विशिष्ट मित्रों के साथ द्वारागण में बैठते, तो उनके उच्च हास्य की गूँजती हुई प्रतिध्वनि वाटिका से सुनायी देती थी। नौकरों चाकरों से वे बहुत सरल व्यवहार रखते थे, यहाँ तक कि उनके संग अलाव के पास बैठने में भी उनको कुछ सङ्कोच न था। परन्तु उनकी धाक ऐसी छायी हुई थी कि उनकी इस सज्जनता से किसी को अनुचित लाभ उठाने का साहस न होता था। चाल-ढाल सामान्य रखते थे। कोट-पतलून से उन्हें घृणा थी। बटनदार ऊँची अचकन, उस पर एक रेशमी काम का अबा, काला शिमला, ढीला पाजामा और दिल्लीवाल नोकदार जूता उनकी मुख्य पोशाक थी। उनके दुहरे शरीर, गुलाबी चेहरे और मध्यम डील पर जितनी यह पोशाक शोभा देती थी, उतनी कोट-पतलून से सम्भव न थी। यद्यपि उनकी धाक सारे नगर-भर में फैली हुई थी, तथापि अपने घर के मण्डलान्तर्गत उनकी एक न चलती थी। यहाँ उनकी सुयोग्य अर्द्धांगिनी का साम्राज्य था। वे अपने अधिकृत प्रान्त में स्वच्छन्दतापूर्वक शासन करती थीं। कई वर्ष व्यतीत हुए डिप्टी साहब ने उनकी इच्छा के विरुद्ध एक महाराजिन नौकर रख ली थी। महाराजिन कुछ रँगीली थी, प्रेमवती अपने पति की इस अनुचित कृति पर ऐसी रुष्ट हुई कि कई सप्ताह तक कोपभवन में बैठी रही। निदान विवश होकर डिप्टी साहब ने महाराजिन को बिदा कर दिया। तब से उन्हें फिर कभी गृहस्थी के व्यवहार में हस्तक्षेप करने का साहस न हुआ।

मुन्शीजी के दो बेटे और एक बेटी थी। बड़ा लड़का राधाचरण गत वर्ष डिग्री प्राप्त करके इस समय रुड़की कॉलेज में पढ़ता था। उसका

विवाह फतहपुर-सीकरी के एक रईस के यहाँ हुआ था। मँझली लड़की का नाम सेवती था। उसका भी विवाह प्रयाग के एक धनी घराने में हुआ था। छोटा लड़का कमलाचरण अभी तक अविवाहित था। प्रेमवती ने बचपन ही से लाड़-प्यार करके उसे ऐसा बिगाड़ दिया था कि उसका मन पढ़ने-लिखने में तनिक भी न लगता था। पन्द्रह वर्ष का हो चुका था, पर अभी तक सीधा-सा पत्र भी न लिख सकता था। मियाँजी बैठे। उन्हें इसने एक मास के भीतर निकालकर साँस ली। तब पाठशाला में नाम लिखाया गया। वहाँ जाते ही उसे ज्वर चढ़ आता और सिर दुखने लगता था। इसलिए वहाँ से भी वह उठा लिया गया। तब एक मास्टर साहब नियत हुए और तीन महीने रहे, परन्तु इतने दिनों में कमलाचरण ने कठिनता से तीन पाठ पढ़े होंगे। निदान मास्टर साहब भी विदा हो गये। तब डिप्टी साहब ने स्वय पढ़ाना निश्चित किया। परन्तु एक ही सप्ताह में उन्हें कई बार कमला का सिर हिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। साक्षियों के बयान और वकीलों की सूक्ष्म आलोचनाओं के तत्त्व को समझना इतना कठिन नहीं है, जितना किसी निरुत्साही लड़के के मन में शिक्षा-रुचि उत्पन्न करना।

प्रेमवती ने इस मारधाड़ पर ऐसा उत्पात मचाया कि अन्त मे डिप्टी साहब ने भी झल्लाकर पढ़ाना छोड़ दिया। कमला कुछ ऐसा रूपवान्, सुकुमार और मधुरभाषी था कि माता उसे सब लड़कों से अधिक चाहती थी। इस अनुचित लाड़-प्यार ने उसे पतंग, कबूतरबाजी और इसी प्रकार के अन्य कुव्यसनों का प्रेमी बना दिया था। सवेरा हुआ और कबूतर उड़ाये जाने लगें। बटेरों के जोड़ छूटने लगे; सन्ध्या हुई और पतंग के लम्बे-लम्बे पेंच होने लगे। कुछ दिनों से जुए का भी चस्का पड़ चला था। दर्पण, कंघी और इत्र-तेल मे तो मानो उसके प्राण ही बसते थे।

प्रेमवती एक दिन सुवामा से मिलने गयी हुई थी। वहाँ उसने वृजरानी को देखा और उसी दिन से उसका जी ललचाया हुआ था कि यदि

यह वहू बनकर मेरे घर में आवे, तो घर का भाग्य जाग उठे। उसने सुशीला पर अपना यह भाव प्रगट किया। विरजन को तेरहवाँ आरम्भ हो चुका था। पति-पत्नी में विवाह के सम्बन्ध में बातचीत हो रही थी। प्रेमवती की इच्छा पाकर दोनों फूले न समाये। एक तो परिचित परिवार, दूसरे कुलीन लड़का, बुद्धिमान् और शिक्षित, पैतृक सम्पत्ति अधिक। यदि इनमें नाता हो जाय तो क्या पूछना। चटपट रीति के अनुसार सन्देश कहला भेजा।

इस प्रकार सयोग ने आज उस विषैले वृक्ष का बीज बोया, जिसने तीन ही वर्ष में कुल का सर्वनाश कर दिया। भविष्य हमारी दृष्टि से कैसा गुप्त रहता है?

ज्योंही सदेशा पहुँचा, सास, ननद और वहू में बातें होने लगीं।

वहू (चन्द्रा)—क्यों अम्माँ। क्या आप इसी साल व्याह करेंगी?

प्रेमवती—और क्या, तुम्हारे लालाजी के मानने की देर है।

वहू—कुछ तिलक-दहेज भी ठहरा?

प्रेमवती—तिलक-दहेज ऐसी लड़कियों के लिए नहीं ठहराया जाता। जब तुला पर लड़की लड़के बराबर नहीं ठहरती, तभी दहेज का पासङ्ग बनाकर उसे बराबर कर देते हैं। हमारी वृजरानी कमला से बहुत भारी है।

सेवती—कुछ दिनों घर में खूब धूमधाम रहेगी। भाभी गीत गायेंगी। हम ढोल बजायेंगे। क्यों भाभी?

चन्द्रा—मुझे नाचना-गाना नहीं आता।

चन्द्रा का स्वर कुछ भद्दा था; जब गाती, स्वर-भङ्ग हो जाता था। इसलिए उसे गाने से चिढ थी।

सेवती—यह तो तुम आप ही कहो। तुम्हारे गाने की तो ससार में धूम है।

चन्द्रा जल गयी, तीखी होकर बोली—जिसे नाच-गाकर दूसरों को लुभाना हो, वह नाचना-गाना सीखे।

सेवती—तुम तो तनिक-सी हँसी में रूठ जाती हो। जरा वही गीत

गाओ तो—'तुम तो श्याम बड़े बेख़बर हो।' इस समय सुनने को बहुत जी चाहता है। महीनों से तुम्हारा गान नहीं सुना।

चन्द्रा—तुम्हीं गाओ, कोयल की तरह कूकती हो।

सेवती—लो, अब तुम्हारी यही चाल अच्छी नहीं लगती। मेरी अच्छी भाभी, तनिक गाओ।

चन्द्रा—मैं इस समय न गाऊँगी। क्या मुझे कोई डोमनी समझ लिया है?

सेवती—मैं तो बिना गीत सुने आज तुम्हारा पीछा न छोड़ूँगी।

सेवती का स्वर परम सुरीला और चित्ताकर्षक था। रूप और आकृति भी मनोहर, कुन्दन वरण और रसीली आँखें, प्याजी रङ्ग की साड़ी उस पर खूब खिल रही थी। वह आप-ही-आप गुनगुनाने लगी—

तुम तो श्याम बड़े बेख़बर हो.. तुम तो श्याम "
आप तो श्याम पीयो दूध के कुल्हड़, मेरी तो पानी पै गुजर—
पानी पै गुजर हो। तुम तो श्याम०।

दूध के कुल्हड़ पर वह हँस पड़ी। प्रेमवती भी मुसकरायी, परन्तु चन्द्रा रुष्ट हो गयी। बोली—'बिना हँसी की हँसी हमें नहीं भाती। इसमें हँसने की क्या बात है?'

सेवती—आओ, हम-तुम मिलकर गायें।

चन्द्रा—कोयल और कौए का क्या साथ?

सेवती—क्रोध तो तुम्हारी नाक पर रहता है।

चन्द्रा—तो हमें क्यों छेड़ती हो? हमें गाना नहीं आता, तो कोई तुमसे निन्दा करने तो नहीं जाता?

'कोई' का सकेत राधाचरण की ओर था। चन्द्रा में चाहे और गुण न हों, परन्तु पति की सेवा वह तन-मन से करती थी। उनका तनिक भी सिर धमका कि इसका प्राण निकला। उनको घर आने में तनिक देर हुई कि यह व्याकुल होने लगी। जब से वे रुकड़ी चले गये, तब से चन्द्रा का

हँसना-बोलना सब छूट गया था। उसका विनोद उनके सङ्ग चला गया था। इन्हीं कारणों ने राधाचरण को स्त्री का वशीभूत बना दिया था। प्रेम, रूप, गुण आदि सब त्रुटियों का पूरक है।

सेवती—निन्दा क्यों करेगा, 'कोई' तो तन-मन से तुझ पर रीझा हुआ है।

चन्द्रा—इधर कई दिनों से चिट्ठी नहीं आयी।

सेवती—तीन-चार दिन हुए होंगे।

चन्द्रा—तुमसे तो हाथ-पैर जोड़ के हार गयी। तुम लिखतीं ही नहीं।

सेवती—अब वे ही बातें प्रतिदिन कौन लिखे, कोई नयी बात हो तो लिखने को जी भी चाहे।

चन्द्रा—आज विवाह के समाचार लिख देना। लाऊँ कलम-दावात?

सेवती—परन्तु एक शर्त पर लिखूँगी।

चन्द्रा—बताओ।

सेवती—तुम्हें श्यामवाला गीत गाना पड़ेगा।

चन्द्रा—अच्छा, गा दूँगी। हँसने ही को जी चाहता है न? हँस लेना?

सेवती—पहिले गा दो तो लिखूँ।

चन्द्रा—न लिखोगी। फिर बातें बनाने लगोगी।

सेवती—तुम्हारी शपथ, लिख दूँगी, गाओ।

चन्द्रा गाने लगी—

तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

तुम तो श्याम पीयो दूध के कुल्हड़, मेरी तो पानी पै गुजर,
पानी पै गुजर हो। तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

अन्तिम शब्द कुछ ऐसे बेसुर-से निकले कि हँसी का रोकना कठिन हो गया। सेवती ने बहुत रोका, पर न रुक सकी। हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये। चन्द्रा ने दूसरा पद गाया—

आप तो श्याम रक्खो दो-दो लुगाइयाँ,

मेरी तो आपी पै नज़र, आपी पै नज़र हो।

तुम तो श्याम ॥

'लुगाइयाँ' पर सेवती हँसते-हँसते लोट गयी। चन्द्रा ने सजल नेत्र होकर कहा--'अब तो बहुत हँस चुकीं, लाऊँ कागज ?'

सेवती—नहीं, नहीं; अभी तनिक हँस लेने दो।

सेवती हँस रही थी कि बाबू कमलाचरण का बाहर से शुभागमन हुआ। पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु थी। गोरा-गोरा गेहुआँ रंग। छरहरा शरीर, हँसमुख, भड़कीले वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किये, इत्र में बसे, नेत्रों में सुरमा, अधर पर मुसकान और हाथ में बुलबुल लिये आकर चारपाई पर बैठ गये। सेवती बोली—कमलू ! मुँह मीठा कराओ, तो तुम्हें ऐसे शुभ-समाचार सुनायें कि सुनते ही फड़क उठो।

कमला—मुँह तो तुम्हारा आज अवश्य ही मीठा होगा। चाहे शुभ-समाचार सुनाओ, चाहे न सुनाओ। आज इस पट्ठे ने वह विजय प्राप्त की है कि लोग दंग रह गये।

यह कहकर कमलाचरण ने बुलबुल को अँगूठे पर बिठा लिया।

सेवती—मेरी खबर सुनते ही नाचने लगोगे।

कमला—तो अच्छा है कि आप न सुनाइए। मैं तो आज योंही नाच रहा हूँ। इस पट्ठे ने आज नाक रख ली। सारा नगर दङ्ग रह गया। नवाब मुन्नेख़ाँ बहुत दिनों से मेरी आँखों पर चढ़े हुए थे। एक मास होता है, मैं उधर से निकला, तो आप कहने लगे—'मियाँ, कोई पट्ठा तैयार हो तो लाओ, दो-दो चोंचें हो जायँ।' यह कहकर आपने अपना पुराना बुलबुल दिखाया। मैंने कहा—'कृपानिधान ! अभी तो नहीं, परन्तु एक मास में यदि ईश्वर चाहेगा तो आपसे अवश्य एक जोड़ होगी, और बद-बद कर।' आज आग़ा शेरअली के अखाड़े में बदान की ठहरी। पचास-पचास रुपए की बाज़ी थी। लाखों मनुष्य जमा थे। उनका पुराना बुल-बुल, विश्वास मानो सेवती, कबूतर के बराबर था। परन्तु जिस समय यह

पट्टा चला है तो इसकी उठी हुई गर्दन, मतवाली चाल और गठीलेपन पर लोग धन्य-धन्य करने लगे। जाते-ही-जाते इसने उसका टेटुवा लिया। परन्तु वह भी केवल फूला हुआ न था। सारे नगर के बुलबुलों को पराजित किये बैठा था। बलपूर्वक लात चलायी। इसने बार-बार बचाया और फिर झपटकर उसकी चोटी दबायी। उसने फिर चोट की। यह नीचे आया, चतुर्दिक् कोलाहल मच गया—मार लिया, मार लिया। तब तो मुझे भी क्रोध आया, डपटकर जो ललकारता हूँ तो यह ऊपर और वह नीचे दबा हुआ है। फिर तो उसने कितना ही सिर पटका कि ऊपर आ जाय, परन्तु इस शेर ने ऐसा दाबा कि सिर न उठाने दिया। नवाब साहब स्वयं उपस्थित थे। बहुत चिल्लाये, पर क्या हो सकता है? इसने उसे ऐसा दबोचा था जैसे बाज़ चिड़िया को, आखिर बागटुट भागा। इसने पाली के उस पार तक पीछा किया, पर न पा सका। लोग विस्मय से दंग हो गये। नवाब साहब का तो मुख मलिन हो गया। हवाइयाँ उड़ने लगीं। रुपए हारने की तो उन्हें कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि लाखों की आय है; परन्तु नगर मे जो उनकी धाक बँधी हुई थी, वह जाती रही। रोते हुए घर को सिधारे। सुनता हूँ, यहाँ से जाते ही उन्होंने अपने बुलबुल को जीवित ही गाड़ दिया। यह कहकर कमलाचरण ने जेब खनखनायी।

सेवती—तो फिर खड़े क्या कर रहे हो? आगरे वाले की दूकान पर आदमी भेजो।

कमला—तुम्हारे लिये क्या लाऊँ, भाभी?

सेवती—दूध के कुल्हड़।

कमला—और भैया के लिए?

सेवती—दो-दो खुगाईयाँ।

यह कहकर दोनों ठट्टा मारकर हँसने लगे।

[७]

निठुरता और प्रेम

सुवामा-तन-मन से विवाह की तैयारियाँ करने लगीं। भोर से सन्ध्या तक विवाह ही के धन्धों में उलझी रहती। सुशीला चेरी की भाँति उसकी आज्ञा का पालन किया करती। मुन्शी सजीवनलाल प्रातःकाल से साँझ तक हाट की धूल छानते रहते। और विरजन, जिसके लिए यह सब तैयारियाँ हो रही थीं, अपने कमरे में बैठी हुई रात-दिन रोया करती। किसी को इतना अवकाश भी न था कि क्षण-भर के लिए उसका मन बहलाये। यहाँ तक कि प्रताप भी अब उसे निठुर जान पड़ता था। प्रताप का मन भी इन दिनों बहुत ही मलिन हो गया था। सवेरे का निकला हुआ साँझ को घर आता और अपनी मुँड़ेर पर चुपचाप जा बैठता। विरजन के घर जाने की तो उसने शपथ-सी कर ली थी। वरन् जब कभी वह आती हुई दिखायी देती, तो चुपके-से सरक जाता। यदि कहने-सुनने से बैठता भी तो कुछ इस भाँति मुख फेर लेता और ऐसी रुखाई का व्यवहार करता कि विरजन रोने लगती और सुवामा से कहती—चच्ची, लल्लू मुझसे रुष्ट हैं; मैं बुलाती हूँ, तो नहीं बोलते। तुम चलकर मना दो। यह कहकर वह मचल जाती और सुवामा का आँचल पकड़कर खींचती हुई प्रताप के घर लाती। परन्तु प्रताप दोनों को देखते ही निकल भागता। वृजरानी द्वार तक यह कहती हुई आती कि—लल्लू, तनिक सुन लो, तनिक सुन लो, तुम्हें हमारी शपथ; तनिक सुन लो। पर जब वह न सुनता और न मुँह फेरकर देखता ही तो बेचारी लड़की पृथ्वी पर बैठ जाती और भली-भाँति फूट-फूटकर रोती और कहती—यह मुझसे क्यों रूठे हुए हैं? मैंने तो इन्हें कभी कुछ नहीं कहा। सुवामा उसे छाती से लगा लेती और समझाती—बेटा! जाने दो, लल्लू पागल हो गया है। उसे अपने पुत्र की निठुरता का भेद कुछ-कुछ ज्ञात हो चला था।

निदान विवाह को केवल पाँच दिन रह गये। नातेदार और सम्बन्धी

लोग दूर तथा समीप से आने लगे। आँगन में सुन्दर मण्डप छा गया। हाथ में कङ्गन बँध गयीं। यह कच्चे धागे का कङ्गन पवित्र धर्म की हथकड़ी है, जो कभी हाथ से न निकलेगी और मण्डप उस प्रेम और कृपा की छाया का स्मारक है, जो जीवनपर्यन्त सिर से न उठेगी। आज सन्ध्या को सुवामा, सुशीला, महराजिनें सब-की-सब मिलकर देवी की पूजा करने को गयीं। महरियाँ अपने धधों में लगी हुई थीं। विरजन व्याकुल होकर अपने घर में से निकली और प्रताप के घर आ पहुँची। चतुर्दिक् सन्नाटा छाया हुआ था। केवल प्रताप के कमरे में धुँधला प्रकाश झलक रहा था। विरजन कमरे में आयी, तो क्या देखती है कि मेज़ पर लालटेन जल रही है और प्रताप एक चारपाई पर सो रहा है। धुँधले उजाले में उसका वदन कुम्हलाया और मलिन नजर आता है। वस्तुएँ सब इधर-उधर बेढग पड़ी हुई हैं। ज़मीन पर मनों धूल चढी हुई है। पुस्तकें फैली हुई हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो इस कमरे को किसी ने महीनों से नहीं खोला। यह वही प्रताप है, जो स्वच्छता को प्राण-प्रिय समझता था। विरजन ने चाहा उसे जगा दूँ। पर कुछ सोचकर भूमि से पुस्तकें उठा-उठाकर आल्मारी में रखने लगी। मेज पर से धूल झाड़ी, चित्रों पर से गर्द का परदा उठा दिया। अचानक प्रताप ने करवट ली और उसके मुख से यह वाक्य निकला—'विरजन। मैं तुम्हें भूल नहीं सकता। फिर थोड़ी देर पश्चात्—'विरजन! विरजन! कहाँ जाती हो, यहीं बैठो?' फिर करवट बदलकर—'न बैठोगी? अच्छा, जाओ। मैं भी तुमसे न बोलूँगी।' फिर कुछ ठहरकर—'अच्छा जाओ, देखें कहाँ जाती हो?' यह कहकर वह लपका, जैसे किसी भागते हुए मनुष्य को पकड़ता हो। विरजन का हाथ उसके हाथ मे आ गया। उसके साथ ही आँखें खुल गयीं। एक मिनट तक उसकी भाव-शून्य दृष्टि विरजन की मुख की ओर गड़ी रही। फिर वह चौंककर उठ बैठा और विरजन का हाथ छोड़कर बोला—'तुम कब आयीं, विरजन? मै अभी तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।'

विरजन ने बोलना चाहा, परन्तु कण्ठ रुँध गया और आँखें भर आयीं। प्रताप ने इधर-उधर देखकर फिर कहा—क्या यह सब तुमने साफ किया? तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ। विरजन ने इसका भी कुछ उत्तर न दिया।

प्रताप—विरजन! तुम मुझे भूल क्यों नहीं जातीं?

विरजन ने आर्द्र नेत्रों से देखकर कहा—क्या तुम मुझे भूल गये?

प्रताप ने लज्जित होकर मस्तक नीचा कर लिया। थोड़ी देर तक दोनों भावों से भरे भूमि की ओर ताकते रहे। फिर विरजन ने पूछा—तुम मुझसे क्यों रुष्ट हो? मैंने कोई अपराध किया है?

प्रताप—न जाने क्यों अब तुम्हें देखता हूँ, तो जी चाहता है कि कहीं चला जाऊँ।

विरजन—क्या तुमको मेरी तनिक भी छोह नहीं लगती? मैं दिनभर रोया करती हूँ। तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती? तुम मुझसे बोलते तक नहीं। बतलाओ मैंने तुम्हें क्या कहा जो तुम रूठ गये?

प्रताप—मैं तुमसे रूठा थोड़े ही हूँ।

विरजन—तो मुझसे बोलते क्यों नहीं?

प्रताप—मैं चाहता हूँ कि तुम्हें भूल जाऊँ। तुम धनवान हो, तुम्हारे माता-पिता धनी हैं, मैं अनाथ हूँ। मेरा तुम्हारा क्या साथ?

विरजन—अब तक तो तुमने कभी यह बहाना न निकाला था, क्या अब मैं अधिक धनवान हो गयी?

यह कहकर विरजन रोने लगी। प्रताप भी द्रवित हुआ। बोला—विरजन! हमारा-तुम्हारा बहुत दिनों तक साथ रहा। अब वियोग के दिन आ गये। थोड़े दिनों में तुम यहाँ वालों को छोड़कर अपने ससुराल चली जाओगी। उस समय मुझे अवश्य ही भूल जाओगी। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि तुम्हें भूल जाऊँ। परन्तु जितना ही चाहता हूँ कि तुम्हारी बातें स्मरण में न आयें, वे नहीं मानतीं। अभी सोते-सोते तुम्हारा ही स्वप्न देख रहा था।

---

[८]

सखियाँ

डिप्टी श्यामाचरण का भवन आज सुन्दरियों के जमघट से इन्द्र का अखाड़ा बना हुआ था। सेवती की चार सहेलियाँ—रुक्मिणी, सीता, रामदेई और चन्द्रकुँवर—सोलहों सिंगार किये अठलाती फिरती थीं। डिप्टी साहब की बहिन जानकीकुँवर भी अपनी दो लड़कियों के साथ इटावे से आ गयी थीं। इन दोनों का नाम कमला और उमादेवी था। कमला का विवाह हो चुका था। उमादेवी अभी कुँवारी थी। दोनों सूर्य और चन्द्र थीं। मंडप के तले डोमनियाँ और गवनिहारिनें सोहर और सोहाग अलाप रही थीं। गुलबिया नाइन और जमुनी कहारिन दोनों चटकीली साड़ियाँ पहिने, माँग सिंदूर से भरवाये,गिलट के कड़े पहिने, छम-छम करती फिरती थीं। गुलबिया चपला नवयौवना थी। जमुना की अवस्था ढल चुकी थी। सेवती का क्या पूछना? आज उसकी अनोखी छटा थी। रसीली आँखें आमोदाधिक्य से मतवाली हो रहीं थीं। और गुलाबी साड़ी की झलक से चम्पई रङ्ग गुलाबी जान पड़ता था। धानी मख़मल की कुरती उस पर खूब खिलती थी। अभी स्नान करके आयी थी, इसलिए नागिन की-सी लटें कंधों पर लहरा रही थीं। छेड़छाड़ और चुहल से इतना अवकाश न मिलता था कि बाल गुँथवा ले। महराजिन की बेटी माधवी छींट का सुन्दर लँहगा पहिने, आँखों मे काजल लगाये, भीतर-बाहर किये हुए थी।

रुक्मिणी ने सेवती से कहा—सिन्नो! तुम्हारी भावज कहाँ है? दिखायी नहीं देतीं। क्या हम लोगों से भी पर्दा है?

रामदेई—(मुस्कुराकर) परदा क्यों नहीं है? हमारी नजर न लग जायगी!

सेवती—कमरे मे पड़ी सो रही होंगी। देखो अभी खींचे लेती हूँ।

यह कहकर वह चन्द्रा के कमरे में पहुँची। वह एक साधारण साड़ी पहिने चारपाई पर पड़ी द्वार की ओर टकटकी लगाये हुए थी। इसे देखते

ही उठ बैठी। सेवती ने कहा—यहाँ क्या पड़ी हो, अकेले तुम्हारा जी नहीं घबराता?

चन्द्रा—उँह, कौन जाय, अभी कपड़े नहीं बदले।

सेवती—तो बदलती क्यों नहीं? सखियाँ तुम्हारी बाट देख रही हैं।

चन्द्रा—अभी मैं न बदलूँगी।

सेवती—यही हठ तुम्हारा अच्छा नहीं लगता। अब अपने मन में क्या कहती होगी?

चन्द्रा—तुमने तो चिट्ठी पढी थी, आज ही आने को लिखा था न?

सेवती—अच्छा, तो यह उनकी प्रतीक्षा हो रही है, यह कहिए। तभी योग साधा है।

चन्द्रा—दोपहर तो हुई, स्यात् अब न आयेंगे।

इतने मे कमला और उमादेवी दोनों आ पहुँची। चन्द्रा ने घूँघट निकाल लिया और फर्श पर आ बैठी। कमला उसकी बड़ी ननद होती थी।

कमला—अरे, अभी तो इन्होंने कपड़े भी नहीं बदले।

सेवती—भैया की बाट जोह रही है। इसलिए यह भेष रचा है।

कमला—मूर्ख हैं। उन्हें गरज होगी, आप आयेंगे।

सेवती—इनकी बात निराली है।

कमला—पुरुषों से प्रेम चाहे कितना ही करे, पर मुख से एक शब्द भी न निकाले, नहीं तो व्यर्थ सताने और जलाने लगते हैं। यदि तुम उनकी उपेक्षा करो, उनसे सीधे बात न करो, तो वे तुम्हारा सब प्रकार आदर करेंगे। तुम पर प्राण समर्पण करेंगे, परन्तु ज्योंही उन्हें ज्ञात हुआ कि अब इसके हृदय में मेरा प्रेम हो गया, बस, उसी दिन से दृष्टि फिर जायेगी। सैर को जायँगे, तो अवश्य देर करके आयेंगे। भोजन करने बैठेंगे तो मुँह जूठा करके उठ जायँगे। बात-बात पर रूठेंगे। तुम रोओगी तो मनायेंगे, मन में प्रसन्न होंगे कि कैसा फंदा डाला है। तुम्हारे सम्मुख अन्य स्त्रियों की प्रशंसा करेंगे। भावार्थ यह कि तुम्हारे जलाने में उन्हें आनन्द

आने लगेगा। अब मेरे ही घर में देखो, पहिले इतना आदर करते थे कि क्या बताऊँ। प्रतिक्षण नौकरों की भाँति हाथ बाँधे खड़े रहते थे। पखा झलने को तैयार, हाथ से कौर खिलाने को तैयार, यहाँ तक कि (मुसकुराकर) पाँव दाबने में भी सङ्कोच न था। बात मेरे मुख से निकली नहीं कि पूरी हुई। मैं उस समय अबोध थी। पुरुषों के कपट-व्यवहार क्या जानूँ? पट्टी में आ गयी। सेवती झूठ न मानना, उसी दिन से उनकी आँखें फिर गयीं। लगे सैर-सपाटे करने। एक दिन रूठकर चल दिये। गजरा गले में डाले, इत्र लगाये आधी रात को घर आये। जानते थे कि आज हाथ बाँधकर खड़ी होगी, मैंने लम्बी तानी तो रात-भर करवट न ली। दूसरे दिन भी न बोली। अत में महाशय सीधे हुए, पैरों पर गिरे, गिड़गिड़ाये। तब से मैंने इस बात की गाँठ बाँध ली है कि पुरुषों को प्रेम कभी न जताओ।

सेवती—जीजा को मैंने देखा है। भैया के विवाह में आये थे। बड़े हँसमुख मनुष्य हैं।

कमला—पार्वती उन दिनों पेट में थी, इसी से मैं न आ सकी थी। यहाँ से गये, तो लगे तुम्हारी प्रशसा करने। तुम कभी पान देने गयी थीं? कहते थे कि मैंने हाथ थामकर बैठा लिया, खूब बातें हुईं।

सेवती—झूठे हैं, लबारिये हैं। बात यह हुई कि गुलबिया और जमुनी दोनों किसी कार्य से बाहर गयी थीं। माँ ने कहा, वे खाकर गये हैं, पान बना के दे आ। मैं पान लेकर गयी, चारपाई पर लेटे थे, मुझे देखते ही उठ बैठे। मैंने पान देने को हाथ बढाया, तो आप कलाई पकड़कर कहने लगे कि एक बात सुन लो एक बात सुन लो, पर मैं हाथ छुड़ाकर भागी।

कमला—निकली न झूठी बात। वही तो मैं भी कहूँ कि अभी ग्यारह-बारह वर्ष की छोकरी, उसने इनसे क्या बातें की होंगी? परन्तु नहीं, अपना ही हठ किये जायँ। पुरुष बड़े प्रलापी होते हैं। मैंने यह कहा, मैंने वह कहा। मेरा तो इन बातों से हृदय सुलगता है। न जाने उन्हें अपने ऊपर झूठा दोष लगाने में क्या स्वाद मिलता है। मनुष्य जो बुरा-भला

करता है, उस पर परदा डालता है। यह लोग करेंगे तो थोड़ा, मिथ्या प्रलाप का आल्हा गाते फिरेंगे ज़्यादा। मैं तो तभी से उनकी एक बात भी सत्य नहीं मानती।

इतने में गुलबिया ने आकर कहा—तुम तो यहाँ ठाढ़ी बतलात हो। और तुम्हारी सखी तुमका आँगन में बुलौती हैं।

सेवती—देखो भाभी, अब देर न करो। गुलबिया, तनिक इनकी पिटारी से कपड़े तो निकाल ले।

कमला चन्द्रा का शृङ्गार करने लगी। सेवती सहेलियों के पास आयी। रुक्मिणी बोली—वाह वहिन, खूब! वहाँ जाकर बैठ रहीं; तुम्हारी दीवारों से बोलें क्या?

सेवती—कमला वहिन चली गयीं। उनसे बात-चीत होने लगी। दोनों आ रही हैं।

रुक्मिणी—लड़कोरी हैं न?

सेवती—हाँ, तीन लड़के हैं।

रामदेई—मगर काठी बहुत अच्छी है।

चन्द्रकुँवर—मुझे उनकी नाक बहुत सुन्दर लगती है, जी चाहता है, छीन लूँ।

सीता—दोनों बहिनें एक-से-एक बढ़कर हैं।

सेवती—सीता को ईश्वर ने वर अच्छा दिया है, इसने सोने की गौर पूजी थी।

रुक्मिणी—(जलकर) गोरे चमड़े से कुछ नहीं होता।

सीता—तुम्हें काला ही भाता होगा।

सेवती—मुझे काला वर मिलता तो विष खा लेती।

रुक्मिणी—यों कहने को जो चाहे कह लो; परन्तु वास्तव में सुख काले ही वर से मिलता है।

सेवती—सुख नहीं, धूल मिलती है। ग्रहण-सा आकर लिपट जाता होगा।

रुक्मिणी—यही तो तुम्हारा लड़कपन है। तुम जानती नहीं, सुन्दर पुरुष अपने ही बनाव-सिंगार में लगा रहता है। उसे अपने आगे स्त्री का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। यदि स्त्री परम रूपवती हो, तो कुशल है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में वह उससे भागने लगता है। वह समझता है कि मैं ऐसी दूसरी स्त्रियों के हृदय पर सुगमता से अधिकार पा सकता हूँ। बेचारा काला और कुरूप पुरुष सुन्दर स्त्री पा जाता है, तो समझता है कि मुझे हीरे की खान मिल गयी। अपने रूप की कमी को वह प्यार और आदर से पूरी करता है। उसके हृदय में ऐसी धुकधुकी लगी रहती है कि मैं तनिक भी इससे खट्टा पड़ा तो वह मुझसे घृणा करने लगेगी।

चन्द्रकुँवर—दूल्हा सबसे अच्छा वह, जो मुँहसे बात निकलतेही पूरी करे।

रामदेई—तुम अपनी बात न चलाओ। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे गहनों से प्रयोजन है—दूल्हा कैसा ही हो।

सीता—न जाने कोई अपने पुरुष से किसी वस्तु की आज्ञा कैसे करता है। क्या सकोच नहीं होता?

रुक्मिणी—तुम बपुरी क्या आज्ञा करोगी, कोई बात भी तो पूछे?

सीता—मेरी तो उन्हें देखने ही से तृप्ति हो जाती है। वस्त्राभूषणों पर जी ही नहीं चलता।

इतने मे एक और सुन्दरी आ पहुँची, गहने से गोंदनी की भाँति लदी हुई। बढ़िया जूती पहने, सुगध मे बसी, आँखों में चपलता बरस रही थी। रामदेई—आओ रानी, आओ, तुम्हारी ही कमी थी।

रानी—क्या करूँ, निगोड़ी नाइन से किसी प्रकार पीछा नहीं छूटता था। कुसुम की मा आयी तब जाके जूड़ा बँधा।

सीता—तुम्हारी जाकिट पर बलिहारी है।

रानी—इसकी कथा मत पूछो। कपड़ा दिये एक मास हुआ। दस-बारह बार दरजी सीकर लाया। पर कभी आस्तीन ढीली कर दी, कभी सीयन बिगाड़ दी, कभी चुनाव बिगाड़ दिया। अभी चलते-चलते दे गया है।

यही बातें हो रही थीं कि माधवी चिल्लाती हुई आयी—'भैया आये, भैया आये। उनके संग जीजा भी आये हैं, ओहो! ओहो!'

रानी—राधाचरण आये क्या?

सेवती—हाँ! चलूँ, तनिक भाभी को सन्देश दे आऊँ! क्यों रे! कहाँ बैठे हैं?

माधवी—उसी बड़े कमरे में। जीजा पगड़ी बाँधे हैं। भैया कोट पहिने हैं, मुझे जीजा ने रुपया दिया। यह कहकर उसने मुट्ठी खोलकर दिखायी।

रानी—सित्तो! अब मुँह मीठा कराओ।

सेवती—क्या मैंने कोई मनौती की थी?

यह कहती हुई सेवती चन्द्रा के कमरे में जाकर बोली—लो भाभी! तुम्हारा सगुन ठीक हुआ।

चन्द्रा—क्या आ गये? तनिक जाकर भीतर बुला लो।

सेवती—हाँ, मर्दाने में चली जाऊँ, तुम्हारे बहनोईजी भी तो पधारे हैं।

चन्द्रा—बाहर बैठे क्या कर रहे हैं? किसी को भेजकर बुला लेती, नहीं तो दूसरों से बातें करने लगेंगे।

अचानक खड़ाऊँ का शब्द सुनायी दिया और राधाचरण आते दिखायी दिये। आयु चौबीस-पच्चीस बरस से अधिक न थी। बड़े ही हँस-मुख, गौर वर्ण, अंग्रेजी काट के बाल, फ्रेंच काट की दाढ़ी, खड़ी मूँछें, लवेंडर की लपटें आ रही थीं। एक पतला रेशमी कुर्ता पहने हुए थे। आकर पलँग पर बैठ गये और सेवती से बोले—क्यों सित्तो! एक सप्ताह से चिट्ठी नहीं भेजी?'

सेवती—मैंने सोचा, अब तो आ ही रहे हो, क्यों चिट्ठी भेजूँ? यह कहकर वहाँ से हट गयी।

चन्द्रा ने घूँघट उठाकर कहा—वहाँ जाकर भूल जाते हो?

राधाचरण—(हृदय से लगाकर) तभी तो सैकड़ों कोस से चला आ रहा हूँ।

रुक्मिणी—यही तो तुम्हारा लड़कपन है। तुम जानती नहीं, सुन्दर पुरुष अपने ही बनाव-सिंगार में लगा रहता है। उसे अपने आगे स्त्री का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। यदि स्त्री परम रूपवती हो, तो कुशल है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में वह उससे भागने लगता है। वह समझता है कि मैं ऐसी दूसरी स्त्रियों के हृदय पर सुगमता से अधिकार पा सकता हूँ। वेचारा काला और कुरूप पुरुष सुन्दर स्त्री पा जाता है, तो समझता है कि मुझे हीरे की खान मिल गयी। अपने रूप की कमी को वह प्यार और आदर से पूरी करता है। उसके हृदय में ऐसी धुकधुकी लगी रहती है कि मैं तनिक भी इससे खट्टा पड़ा तो वह मुझसे घृणा करने लगेगी।

चन्द्रकुँवर—दूल्हा सबसे अच्छा वह, जो मुँहसे बात निकलतेही पूरी करे।

रामदेई—तुम अपनी बात न चलाओ। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे गहनों से प्रयोजन है—दूल्हा कैसा ही हो।

सीता—न जाने कोई अपने पुरुष से किसी वस्तु की आज्ञा कैसे करता है। क्या सकोच नहीं होता?

रुक्मिणी—तुम बपुरी क्या आज्ञा करोगी, कोई बात भी तो पूछे!

सीता—मेरी तो उन्हें देखने ही से तृप्ति हो जाती है। वस्त्राभूषणों पर जी ही नहीं चलता।

इतने मे एक और सुन्दरी आ पहुँची, गहने से गोंदनी की भाँति लदी हुई। बढिया जूती पहने, सुगंध में बसी, आँखों में चपलता बरस रही थी।

रामदेई—आओ रानी, आओ, तुम्हारी ही कमी थी।

रानी—क्या करूँ, निगोड़ी नाइन से किसी प्रकार पीछा नहीं छूटता था। कुसुम की मा आयी तब जाके जूड़ा बँधा।

सीता—तुम्हारी बाकिट पर बलिहारी है।

रानी—इसकी कथा मत पूछो। कपड़ा दिये एक मास हुआ। दस-बारह बार दरजी सीकर लाया। पर कभी आस्तीन ढीली कर दी, कभी सीयन बिगाड़ दी; कभी बुनाव बिगाड़ दिया। अभी चलते-चलते दे गया है।

यही बातें हो रही थीं कि माधवी चिल्लाती हुई आयी—'भैया आये, भैया आये। उनके संग जीजा भी आये हैं, ओहो ! ओहो !'

रानी—राधाचरण आये क्या ?

सेवती—हाँ ! चलूँ, तनिक भाभी को सन्देश दे आऊँ ! क्यों रे ! कहाँ बैठे हैं ?

माधवी—उसी बड़े कमरे में। जीजा पगड़ी बाँधे हैं। भैया कोट पहिने हैं, मुझे जीजा ने रुपया दिया। यह कहकर उसने मुट्ठी खोलकर दिखायी।

रानी—सित्तो ! अब मुँह मीठा कराओ।

सेवती—क्या मैंने कोई मनौती की थी ?

यह कहती हुई सेवती चन्द्रा के कमरे में जाकर बोली—लो भाभी ! तुम्हारा सगुन ठीक हुआ।

चन्द्रा—क्या आ गये ? तनिक जाकर भीतर बुला लो।

सेवती—हाँ, मर्दाने में चली जाऊँ, तुम्हारे बहनोईजी भी तो पधारे हैं।

चन्द्रा—बाहर बैठे क्या कर रहे हैं ? किसी को भेजकर बुला लेती, नहीं तो दूसरों से बातें करने लगेंगे।

अचानक खड़ाऊँ का शब्द सुनायी दिया और राधाचरण आते दिखायी दिये। आयु चौबीस-पचीस बरस से अधिक न थी। बड़े ही हँस-मुख, गौर वर्ण, अंग्रेजी काट के बाल, फ्रेंच काट की दाढ़ी, खड़ी मूँछें, लवेंडर की लपटें आ रही थीं। एक पतला रेशमी कुर्ता पहने हुए थे। आकर पलँग पर बैठ गये और सेवती से बोले—क्यों सित्तो ! एक सप्ताह से चिट्ठी नहीं भेजी ?'

सेवती—मैंने सोचा, अब तो आ ही रहे हो, क्यों चिट्ठी भेजूँ ? यह कहकर वहाँ से हट गयी।

चन्द्रा ने घूँघट उठाकर कहा—वहाँ जाकर भूल जाते हो ?

राधाचरण—(हृदय से लगाकर) तभी तो सैकड़ों कोस से चला आ रहा हूँ।

रुक्मिणी—यही तो तुम्हारा लड़कपन है। तुम जानती नहीं, सुन्दर पुरुष अपने ही बनाव-सिंगार में लगा रहता है। उसे अपने आगे स्त्री का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। यदि स्त्री परम रूपवती हो, तो कुशल है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में वह उससे भागने लगता है। वह समझता है कि मैं ऐसी दूसरी स्त्रियों के हृदय पर सुगमता से अधिकार पा सकता हूँ। बेचारा काला और कुरूप पुरुष सुन्दर स्त्री पा जाता है, तो समझता है कि मुझे हीरे की खान मिल गयी। अपने रूप की कमी को वह प्यार और आदर से पूरी करता है। उसके हृदय में ऐसी धुकधुकी लगी रहती है कि मैं तनिक भी इससे खट्टा पड़ा तो वह मुझसे घृणा करने लगेगी।

चन्द्रकुँवर—दूल्हा सबसे अच्छा वह, जो मुँहसे बात निकलतेही पूरी करे।

रामदेई—तुम अपनी बात न चलाओ। तुम्हें तो अच्छे-अच्छे गहनों से प्रयोजन है—दूल्हा कैसा हो हो।

सीता—न जाने कोई अपने पुरुष से किसी वस्तु की आज्ञा कैसे करता है। क्या सकोच नहीं होता?

रुक्मिणी—तुम बपुरी क्या आज्ञा करोगी, कोई बात भी तो पूछे?

सीता—मेरी तो उन्हें देखने ही से तृप्ति हो जाती है। वस्त्राभूषणों पर जी ही नहीं चलता।

इतने में एक और सुन्दरी आ पहुँची, गहने से गोंदनी की भाँति लदी हुई। बढ़िया जूती पहने, सुगंध में बसी, आँखों में चपलता बरस रही थी।

रामदेई—आओ रानी, आओ, तुम्हारी ही कमी थी।

रानी—क्या करूँ, निगोड़ी नाइन से किसी प्रकार पीछा नहीं छूटता था। कुसुम की मा आयी तब जाके जूड़ा बँधा।

सीता—तुम्हारी बाकिट पर बलिहारी है।

रानी—इसकी कथा मत पूछो। कपड़ा दिये एक मास हुआ। दस-बारह बार दरजी सीकर लाया। पर कभी आस्तीन ढीली कर दी, कभी सीयन बिगाड़ दी, कभी चुनाव बिगाड़ दिया। अभी चलते-चलते दे गया है।

यही बातें हो रही थीं कि माधवी चिल्लाती हुई आयी—'भैया आये, भैया आये। उनके संग जीजा भी आये हैं, ओहो! ओहो!'

रानी—राधाचरण आये क्या?

सेवती—हाँ! चलूँ, तनिक भाभी को सन्देश दे आऊँ! क्यों रे! कहाँ बैठे हैं?

माधवी—उसी बड़े कमरे में। जीजा पगड़ी बाँधे हैं। भैया कोट पहिने हैं, मुझे जीजा ने रुपया दिया। यह कहकर उसने मुट्ठी खोलकर दिखायी।

रानी—सित्तो! अब मुँह मीठा कराओ।

सेवती—क्या मैंने कोई मनौती की थी?

यह कहती हुई सेवती चन्द्रा के कमरे में जाकर बोली—लो भाभी! तुम्हारा सगुन ठीक हुआ।

चन्द्रा—क्या आ गये? तनिक जाकर भीतर बुला लो।

सेवती—हाँ, मर्दाने में चली जाऊँ, तुम्हारे बहनोईजी भी तो पधारे हैं।

चन्द्रा—बाहर बैठे क्या कर रहे हैं? किसी को भेजकर बुला लेती, नहीं तो दूसरों से बातें करने लगेंगे।

अचानक खड़ाऊँ का शब्द सुनायी दिया और राधाचरण आते दिखायी दिये। आयु चौबीस-पच्चीस बरस से अधिक न थी। बड़े ही हँस-मुख, गौर वर्ण, अंग्रेजी काट के बाल, फ्रेंच काट की दाढ़ी, खड़ी मूँछें, लवेंडर की लपटें आ रही थीं। एक पतला रेशमी कुर्ता पहने हुए थे। आकर पलँग पर बैठ गये और सेवती से बोले—क्यों सित्तो! एक सप्ताह से चिट्ठी नहीं भेजी?

सेवती—मैंने सोचा, अब तो आ ही रहे हो, क्यों चिट्ठी भेजूँ? यह कहकर वहाँ से हट गयी।

चन्द्रा ने घूँघट उठाकर कहा—वहाँ जाकर भूल जाते हो?

राधाचरण—(हृदय से लगाकर) तभी तो सैकड़ों कोस से चला आ रहा हूँ।

[६]

ईर्ष्या

प्रतापचन्द्र ने विरजन के घर आना-जाना विवाह के कुछ दिन पूर्व ही से त्याग दिया था। वह विवाह के किसी भी कार्य में सम्मिलित नहीं हुआ। यहाँ तक कि महफिल में भी न गया। मलिन मन किये, मुँह लटकाये, अपने घर बैठा रहा। मुन्शी सजीवनलाल, सुशीला, सुवामा सब विनती करके हार गये; पर उसने बरात की ओर दृष्टि भी न फेरी। अन्त में मुन्शीजी का मन टूट गया और फिर कुछ न बोले। यह दशा विवाह के होने तक थी। विवाह के पश्चात् तो उसने उधर का मार्ग ही त्याग दिया। स्कूल जाता तो इस प्रकार एक ओर से निकल जाता, मानो आगे कोई बाघ बैठा हुआ है, या जैसे महाजन से कोई ऋणी मनुष्य आँख बचाकर निकल जाता है। विरजन की तो परछाईं से भागता। यदि कभी उसे अपने घर में देख पाता तो भीतर पग न देता। माता समझाती—बेटा! तुम विरजन से बोलते-चालते क्यों नहीं हो? क्यों उससे मन मोटा किये हुए हो? वह आ-आकर घण्टों रोती है कि मैंने क्या किया है, जिससे वे रुष्ट हो गये। देखो, तुम और वह कितने दिनों तक एक संग रहे हो। तुम उसे कितना प्यार करते थे। अकस्मात् तुमको क्या हो गया? यदि तुम ऐसे ही रूठे रहोगे तो बेचारी लड़की की जान पर बन जायगी। सूखकर काँटा हो गयी है। ईश्वर जानता है, मुझे उसे देखकर करुणा उत्पन्न होती है। तुम्हारी चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात ही नहीं भाती।

प्रताप आँखें नीची किये हुए यह सब सुनता और चुपचाप सरक जाता। प्रताप अब भोला बालक नहीं था। उसके जीवनरूपी वृक्ष में यौवनरूपी कोपलें फूट रही थीं। उसने बहुत दिनों से—उसी समय से जबसे उसने होश सँभाला—विरजन के जीवन को अपने जीवन में शर्करा-क्षीर की भाँति मिला लिया था। उन मनोहर और सुहावने स्वप्नों का इस कठोरता और निर्दयता से धूल में मिलाया जाना उसके कोमल हृदय को विदीर्ण करने

के लिए काफी था। वह, जो अपने विचारों में विरजन को अपना सर्वस्व समझता था, कहीं का न रहा, और वह, जिसने विरजन को एक पल के लिए भी अपने ध्यान में स्थान न दिया था, उसका सर्वस्व हो गया। इस वितर्क से उसके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न होती थी और जी चाहता था कि जिन लोगों ने मेरी स्वप्नवत् भावनाओं का नाश किया है और मेरे जीवन की आशाओं को मिट्टी में मिलाया है, उन्हें मै भी जलाऊँ और सुलगाऊँ। सबसे अधिक क्रोध उसे जिस पर आता था, वह बेचारी सुशीला थी।

शनै शनै उसकी यह दशा हो गयी कि जब स्कूल से आता तो कमला चरण के सम्बन्ध की कोई घटना अवश्य वर्णन करता। विशेषकर उस समय, जब सुशीला भी बैठी रहती। उस बेचारी का मन दुखाने में इसे बड़ा ही आनन्द आता। यद्यपि मिथ्या भाषण से उसे घृणा थी, जो कुछ कहता, सत्य ही कहता था, तथापि अव्यक्त रीति से उसका कथन और वाक्य-गति ऐसी हृदय-भेदिनी होती थी कि सुशीला के कलेजे में तीर की भाँति लगती थी। आज महाशय कमलाचरण तिपाई के ऊपर खड़े थे, मस्तक गगन को स्पर्श करता था। परन्तु निर्लज्ज इतने बड़े कि जब मैंने उनकी ओर संकेत किया तो खड़े-खड़े हँसने लगे। आज बड़ा तमाशा हुआ। कमल ने एक लड़के की घड़ी उड़ा दी। उसने मास्टर से शिकायत की। उसके समीप वे ही महाशय बैठे हुए थे। मास्टर ने खोज की तो आप ही के फेंटे में से घड़ी मिली। फिर क्या था? बड़े मास्टर के यहाँ रिपोर्ट हुई। वह सुनते ही झल्ला गये और कोई तीन दर्जन बेंतें लगायीं सड़ासड़। सारा स्कूल यह कुतूहल देख रहा था। जब तक बेंतें पड़ा कीं, महाशय चिल्लाया किये, परन्तु बाहर निकलते ही खिलखिलाने लगे; और मूँछों पर ताव देने लगे। चच्ची! नहीं सुना? आज लड़कों ने ठीक स्कूल के फाटक पर कमलाचरण को पीटा। मारते-मारते बेसुध कर दिया? सुशीला ये बातें सुनती और सुन-सुनकर कुढ़ती। हाँ। प्रताप ऐसी कोई बात विरजन के सामने न करता।

यदि वह घर में बैठी भी होती तो जब तक वह चली न जाती, यह चर्चा न छेड़ता। वह चाहता था कि मेरी किसी बात से इसे कुछ दुःख न हो।

समय-समय पर मुंशी संजीवनलाल ने भी कई बार प्रताप की कथाओं की पुष्टि की। कभी कमला हाट में बुलबुल लड़ाते मिल जाता, कभी गुण्डों के संग सिगरेट पीते, पान चबाते, बेढंगेपन से घूमता हुआ दिखायी देता। मुन्शीजी जब जामाता की यह दशा देखते तो घर आते ही स्त्री पर क्रोध निकालते—यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुम्हीं ने कहा था, घर-वर दोनों अच्छे हैं, तुम्हीं रीझी हुई थीं। उन्हें उस क्षण यह विचार न होता कि जो दोषारोपण सुशीला पर है, कम-से-कम मुझपर भी उतना ही है। वह बेचारी तो घर में बन्द रहती थी, उसे क्या ज्ञान था कि लड़का कैसा है। वह सामुद्रिक विद्या थोड़े ही पढ़ी थी? उसके माता-पिता को सभ्य देखा, उनकी कुलीनता और वैभव पर सहमत हो गयी। पर मुन्शीजी ने तो केवल अकर्मण्यता और आलस्य के कारण छान-बीन न की, यद्यपि उन्हें इसके अनेक अवसर प्राप्त थे, और मुंशीजी के अगणित बान्धव इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान हैं जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र बन्द करके कुएँ में ढकेल दिया करते हैं।

सुशीला के लिए विरजन से प्रिय जगत् में अन्य वस्तु न थी। विरजन उसका प्राण थी, विरजन उसका धर्म थी और विरजन ही उसका सत्य थी। वही उसका प्राणाधार थी, वही उसके नयनों की ज्योति और हृदय का उत्साह थी। उसकी सर्वोच्च सांसारिक अभिलाषा यह थी कि मेरी प्यारी विरजन अच्छे घर जाय। इसके सास-ससुर देवी-देवता हों, उसका पति शिष्टता की मूर्ति और श्रीरामचन्द्रजी की भाँति सुशील हो, उस पर कष्ट की छाया भी न पड़े। उसने मर-मरकर बड़ी मिन्नतों से यह पुत्री पायी थी और उसकी इच्छा थी कि इस रसीले नयनोंवाली, अपनी भोली-भाली बाला को अपने मरण-पर्यन्त आँखों से अदृश्य न होने दूँगी। अपने जामाता को भी यहीं बुलाकर अपने घर रखूँगी। विरजन के बच्चे होंगे। उनका पोषण

करूँगी। जामाता मुझे माता कहेगा, मै उसे लड़का समझूँगी। जिस हृदय मे ऐसे मनोरथ हों, उस पर ऐसी दारुण और हृदयविदारिणी बातों का जो कुछ प्रभाव पड़ेगा, प्रकट है।

हा! हन्त!! दीना सुशीला के सारे मनोरथ मिट्टी में मिल गये। उसकी सारी आशाओं पर ओस पड़ गयी। क्या सोचती थी और क्या हो गया। अपने मन को बार-बार समझाती कि अभी क्या है; जब कमला सयाना हो जायेगा तो सब बुराइयाँ स्वय त्याग देगा। पर एक निन्दा का घाव भरने नहीं पाता था कि फिर कोई नवीन घटना सुनने मे आ जाती। इसी प्रकार आघात-पर-आघात पड़ते गये। हाय! नहीं मालूम विरजन के भाग्य में क्या बदा है? क्या यह गुन की मूर्ति, मेरे घर की दीप्ति, मेरे शरीर का प्राण इसी दुष्प्रकृति-मनुष्य के सग जीवन व्यतीत करेगी? क्या मेरी श्यामा इसी गिद्ध के पाले पड़ेगी? यह सोचकर सुशीला रोने लगती और घण्टों रोती। पहिले विरजन को कभी-कभी डाँट-डपट भी दिया करती थी। अब भूलकर भी कोई बात न कहती। उसका मुँह देखते ही उसे याद आ जाती। एक क्षण के लिए भी उसे सामने से अदृश्य न होने देती। यदि ज़रा देर के लिए यह सुवामा के घर चली जाती, तो स्वय पहुँच जाती। उसे ऐसा प्रतीत होता मानो कोई उसे छीनकर ले भागता है। जिस प्रकार वधिक की छुरी के तले अपने बछड़े को देखकर गाय का रोम-रोम काँपने लगता है, उसी प्रकार विरजन के दुःख का ध्यान करके सुशीला की आँखों में ससार सूना जान पडता था। इन दिनो विरजन को पल-भर के लिए नेत्रों से दूर करते उसे वह कष्ट और व्याकुलता होती थी, जो चिड़िया को घोंसले से बच्चों के खो जाने पर होती है।

सुशीला एक तो योंही जीर्ण रोगिणी थी। उस पर भविष्य की असाध्य चिन्ता और जलन ने उसे और भी घुला डाला। निन्दाओं ने कलेजा चलनी कर डाला। छ मास भी न बीतने पाये थे कि क्षयरोग के चिह्न दिखायी देने लगे। प्रथम तो कुछ दिनों तक साहस करके अपने दुःख को

छिपाती रही, परन्तु कब तक ? रोग बढ़ने लगा और वह शक्तिहीन हो गयी। चारपाई से उठना कठिन हो गया। वैद्य और डाक्टर औषध करने लगे। विरजन और सुवामा दोनों रात-दिन उसके पास बैठी रहतीं। विरजन एक पल के लिए उसकी दृष्टि से ओझल न होने पाती। उसे अपने निकट न देखकर सुशीला बेसुध-सी हो जाती और फूट-फूटकर रोने लगती। मुंशी सजीवनलाल पहिले तो धैर्य के साथ दवा करते रहे, पर जब देखा कि किसी उपाय से कुछ लाभ नहीं होता और बीमारी की दशा दिन-दिन निकृष्ट होती जाती है, तो अन्त में उन्होंने भी निराश हो उद्योग और साहस कम कर दिया। आज से कई साल पहले जब सुवामा बीमार पड़ी थी तब सुशीला ने उसकी सेवा-सुश्रूषा में पूर्ण परिश्रम किया था, अब सुवामा की बारी आयी। उसने पड़ोसी और भगिनी के धर्म का पालन भलीभाँति किया। रुग्ण-सेवा में अपने गृहकार्य को भूल-सी गयी। दो-दो, तीन-तीन दिन तक प्रताप से बोलने की नौबत न आती। बहुधा वह बिना भोजन किये ही स्कूल चला जाता। परन्तु कभी कोई अप्रिय शब्द मुख से न निकालता। सुशीला की रुग्णावस्था ने अब उसकी द्वेषाग्नि को बहुत कम कर दिया था। द्वेष की अग्नि द्वेष्टा की उन्नति और सुदशा के साथ-साथ तीव्र और प्रज्ज्वलित होती जाती है और उसी समय शान्त होती है जब द्वेष्टा के जीवन का दीपक बुझ जाता है।

जिस दिन वृजरानी को ज्ञात हो जाता कि आज प्रताप बिना भोजन किये स्कूल जा रहा है, उस दिन वह सब काम छोड़कर उसके घर दौड़ जाती और भोजन करने के लिए आग्रह करती, पर प्रताप उससे बात तक न करता; उसे रोते छोड़ बाहर चला जाता। निस्सन्देह वह विरजन को पूर्णतः निर्दोष समझता था, परन्तु एक ऐसे सम्बन्ध को, जो वर्ष-छः मास में टूट जानेवाला हो, वह पहले ही से तोड़ देना चाहता था। एकान्त में बैठकर वह आप ही आप फूट-फूटकर रोता, परन्तु प्रेम के उद्वेग को अधिकार से बाहर न होने देता।

एक दिन वह स्कूल से आकर अपने कमरे में बैठा हुआ था कि विरजन आयी। उसके कपोल अश्रु से भीगे हुए थे और वह लम्बी-लम्बी सिसकियाँ ले रही थी। उसके मुख पर इस समय कुछ ऐसी निराशा छायी हुई थी और उसकी दृष्टि कुछ ऐसी करुणोत्पादक थी कि प्रताप से रहा न गया। सजल नयन होकर बोला—क्यों विरजन! रो क्यों रही हो? विरजन ने कुछ उत्तर न दिया, वरन् और बिलख-बिलखकर रोने लगी। प्रताप का गाम्भीर्य जाता रहा। वह निस्सङ्कोच होकर उठा और विरजन की आँखों से आँसू पोंछने लगा। विरजन ने स्वर सँभालकर कहा—लल्लू, अब माताजी न जायेंगी, मैं क्या करूँ? यह कहते-कहते वह फिर सिसकियाँ भरने लगी।

प्रताप यह समाचार सुनकर स्तब्ध हो गया। दौड़ा हुआ विरजन के घर गया और सुशीला की चारपाई के समीप खड़ा होकर रोने लगा। हमारा अन्त समय कैसा धन्य होता है! वह हमारे पास ऐसे-ऐसे अहित-कारियों को खींच लाता है, जो कुछ दिन पूर्व हमारा मुख नहीं देखना चाहते थे, और जिन्हें इस शक्ति के अतिरिक्त संसार की कोई अन्य शक्ति पराजित न कर सकती थी। हाँ, यह समय ऐसा ही बलवान है और बड़े-बड़े बलवान शत्रुओं को हमारे अधीन कर देता है। जिन पर हम कभी विजय न प्राप्त कर सकते थे, उन पर हमको यह समय विजयी बना देता है। जिन पर हम किसी शस्त्र से अधिकार न पा सकते थे, उन पर समय शरीर के शक्तिहीन हो जाने पर भी हमको विजयी बना देता है। आज पूरे वर्ष भर के पश्चात् प्रताप ने इस घर में पदार्पण किया। सुशीला की आँखें बन्द थीं, पर मुखमण्डल ऐसा विकसित था, जैसे प्रभातकाल का कमल। आज भोर ही से वह रट लगाये हुए थी कि लल्लू को दिखा दो। सुवामा ने इसीलिए विरजन को भेजा था।

सुवामा ने कहा—बहिन! आँखें खोलो। लल्लू खड़ा है।

सुशीला ने आँखें खोल दीं और दोनों हाथ प्रेम-बाहुल्य से फैला दिये।

प्रताप के हृदय से विरोध का अन्तिम चिह्न भी विलीन हो गया। यदि ऐसे काल मे भी कोई मत्सर का मैल रहने दे, तो वह मनुष्य कहलाने का हक़दार नहीं है। प्रताप सच्चे पुत्रत्व-भाव से आगे बढा और सुशीला के प्रेमाङ्क मे जा लिपटा। दोनों आध घण्टे तक रोते रहे। सुशीला उसे अपनी दोनों बाँहों से इस प्रकार दबाये हुए थी, मानो वह कहीं भागा जा रहा है। वह इस समय अपने को सैकड़ों धिक्कार दे रहा था कि मैं ही इस दुखिया का प्राणहारी हूँ। मैंने ही द्वेष-दुरावेग के वशीभूत होकर इसे इस गति को पहुँचाया है। मैं ही इस प्रेम की मूर्ति का नाशक हूँ। ज्यों-ज्यों यह भावना उसके मन में उठती, उसकी आँखों से आँसू बहते। निदान सुशीला बोली—लल्लू। अब मै दो-एक दिन की और मेहमान हूँ। मेरा जो कुछ कहा-सुना हो, वह क्षमा करो।

प्रताप का स्वर उसके वश में न था, इसलिए उसने कुछ उत्तर न दिया।

सुशीला फिर बोली—न जाने क्यों तुम मुझसे रुष्ट हो। तुम हमारे घर नहीं आते। हमसे बोलते नहीं। जी तुम्हें प्यार करने को तरस-तरसकर रह जाता है। पर तुम मेरी तनिक भी सुधि नहीं लेते। बताओ, अपनी दुखिया चची से क्यों रुष्ट हो? ईश्वर जानता है, मैं तुमको सदा अपना लड़का समझती रही। तुम्हें देखकर मेरी छाती फूल उठती थी। यह कहते-कहते निर्बलता के कारण उसकी बोली धीमी हो गयी, जैसे क्षितिज के अथाह विस्तार मे उड़नेवाले पक्षी की बोली प्रतिक्षण मध्यम होती जाती है—यहाँ तक कि उसके शब्द का ध्यानमात्र शेष रह जाता है। इसी प्रकार सुशीला की बोली धीमी होते-होते केवल साँय-साँय रह गयी।

---

[१०]

सुशीला की मृत्यु

तीन दिन और बीते, सुशीला के जीने की अब कोई सम्भावना न रही। तीनों दिन मुन्शी संजीवनलाल उसके पास बैठे उसको सान्त्वना देते रहे। वह तनिक देर के लिए भी वहाँ से किसी काम के लिए चले जाते, तो वह व्याकुल होने लगती और रो-रोकर कहने लगती—मुझे छोड़कर कहीं चले गये। उनको नेत्रों के सम्मुख देखकर भी उसे सतोष न होता। रह-रहकर उतावलेपन से उनका हाथ पकड़ लेती और निराश भाव से कहती—मुझे छोड़कर कहीं चले तो नहीं जाओगे? मुन्शीजी यद्यपि बड़े दृढ़चित्त मनुष्य थे, तथापि ऐसी बातें सुनकर अर्द्रनेत्र हो जाते। थोड़ी-थोड़ी देर में सुशीला को मूर्छा-सी आ जाती। फिर चौंकती तो इधर-उधर भौंचक्की-सी देखने लगती। 'वे कहाँ गये? क्या छोड़कर चले गये?' किसी-किसी बार मूर्च्छा का इतना प्रकोप होता कि मुशीजी बार-बार कहते—मैं यहीं हूँ, घबड़ाओ नहीं। पर उसे विश्वास न आता। उन्हीं की ओर ताकती और पूछती कि—'कहाँ हैं? यहाँ तो नहीं हैं। कहाँ चले गये?' थोड़ी देर में जब चेत हो जाता तो चुप रह जाती और रोने लगती। तीनों दिन उसने बिरजन, सुवामा, प्रताप एक की भी सुधि न की। वे सब-के-सब हर घड़ी उसके पास खड़े रहते, पर ऐसा जान पड़ता था, मानों वह मुन्शीजी के अतिरिक्त और किसी को पहचानती ही नहीं है। जब बिरजन बेचैन हो जाती और गले में हाथ डालकर रोने लगती, तो वह तनिक आँखें खोल देती और पूछती—'कौन है, बिरजन?' बस, और कुछ न पूछती। जैसे सूम के हृदय में मरते समय अपने गड़े हुए धन के सिवाय और किसी बात का ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार हिन्दू स्त्री अपने अन्त समय में पति के अतिरिक्त और किसी का ध्यान नहीं कर सकती।

कभी-कभी सुशीला चौंक पड़ती और विस्मित होकर पूछती—'अरे! यह कौन खड़ा है? यह कौन भागा जा रहा है? उन्हें क्यों ले जाते हो?

ना, मैं न जाने दूँगी।' यह कहकर मुन्शीजी के दोनों हाथ पकड़ लेती। एक पल में जब होश आ जाता, तो लज्जित होकर कहती—'मैं सपना देख रही थी, जैसे कोई तुम्हें लिए जा रहा था। देखो, तुम्हें हमारी सौंह है, कहीं जाना नहीं। न जाने कहाँ ले जायगा, फिर तुम्हें कैसे देखूँगी?' मुन्शीजी का कलेजा मसोसने लगता। उसकी ओर अति करुणा-भरी स्नेह-दृष्टि डालकर बोलते—'नहीं, मैं न जाऊँगा। तुम्हें छोड़कर कहाँ जाऊँगा?' सुवामा उसकी दशा देखती और रोती कि अब यह दीपक बुझा ही चाहता है। अवस्था ने उसकी लज्जा दूर कर दी थी। मुन्शीजी के सम्मुख घण्टों मुँह खोले खड़ी रहती।

चौथे दिन सुशीला की दशा सँभल गयी। मुन्शीजी को विश्वास हो गया, बस यह अन्तिम समय है। दीपक बुझने से पहले भभक उठता है। प्रातःकाल जब मुँह धोकर वे घर में आये, तो सुशीला ने सकेत द्वारा उन्हें अपने पास बुलाया और कहा—'मुझे अपने हाथ से थोड़ा-सा पानी पिला दो।' आज वह सचेत थी। उसने विरजन, प्रताप, सुवामा सबको भली-भाँति पहिचाना। वह विरजन को बडी देर तक छाती से लगाये रोती रही। जब पानी पी चुकी तो सुवामा से बोली—'बहिन! तनिक हमको उठाकर बिठा दो, स्वामीजी के चरण छू लूँ। फिर न जाने कब इन चरणों के दर्शन होंगे।' सुवामा ने रोते हुए अपने हाथों से सहारा देकर उसे तनिक-सा उठा दिया। प्रताप और विरजन सामने खड़े थे। सुशीला ने मुन्शीजी से कहा—'मेरे समीप आ जाओ'। मुन्शीजी प्रेम और करुणा से विह्वल होकर उसके गले से लिपट गये और गद्गद् स्वर से बोले—'घबराओ नहीं, ईश्वर चाहेगा तो तुम अच्छी हो जाओगी।' सुशीला ने निराश भाव से कहा—'हाँ, आज अच्छी हो जाऊँगी। जरा अपना पैर बढा दो। मै माथे लगा लूँ।' मुन्शीजी हिचकिचाते रहे। सुवामा रोते हुए बोली—'पैर बढा दीजिए, इनकी इच्छा पूरी हो जाय।' तब मुन्शीजी ने चरण बढा दिये। सुशीला ने उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर कई बार चूमा। फिर

उन पर हाथ रखकर रोने लगी। थोड़ी ही देर में दोनों चरण उष्ण जल-कणों से भींग गये। पतिव्रता स्त्री ने प्रेम के मोती पति के चरणों पर निछावर कर दिये। जब आवाज़ सभली तो उसने विरजन का एक हाथ थाम कर मुन्शीजी के हाथ में दिया और अति मन्द स्वर से कहा—स्वामीजी! आपके सग बहुत दिन रही और जीवन का परम सुख भोगा। अब प्रेम का नाता टूटता है। अब मै पल-भर की और अतिथि हूँ। प्यारी विरजन को तुम्हें सौंप जाती हूँ। मेरा यही चिह्न है। इस पर सदा दया-दृष्टि रखना। मेरे भाग्य मे प्यारी पुत्री का सुख देखना नहीं बदा था। इसे मैंने कभी कोई कटु वचन नहीं कहा, कभी कठोर दृष्टि से नहीं देखा। यह मेरे जीवन का फल है। ईश्वर के लिए तुम इसकी ओर से बेसुध न हो जाना।' यह कहते-कहते हिचकियाँ बँध गयीं और मूर्च्छा-सी आ गयी।

जब कुछ अवकाश हुआ तो उसने सुवामा के सम्मुख हाथ जोड़े और रोकर कहा—'बहिन! विरजन तुम्हारे समर्पण है। तुम्हीं उसका माता हो। लल्लू! प्यारे! ईश्वर करे तुम जुग-जुग जीओ। अपनी विरजन को भूलना मत। वह तुम्हारी दीना और मातृहीना बहिन है। तुममें उसके प्राण बसते हैं। उसे रुलाना मत, उसे कुढाना मत, उसे कभी कठोर वचन मत कहना। उससे कभी न रूठना। उसकी ओर से बेसुध न होना, नहीं तो वह रो-रोकर प्राण दे देगी। उसके भाग्य मे न जाने क्या बदा है, पर तुम उसे अपनी सगी बहिन समझकर सदा ढाढ़स देते रहना। मैं थोड़ी ही देर में तुम लोगों को छोड़कर चली जाऊँगी, पर तुम्हें मेरी सौंह, उसकी ओर से मन मोटा न करना; तुम्हीं उसका बेड़ा पार लगाओगे। मेरे मन में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ थीं, मेरी लालसा थी कि तुम्हारा व्याह करूँगी, तुम्हारे बच्चे को खिलाऊँगी। पर भाग्य में कुछ और ही बदा था।'

यह कहते-कहते वह फिर अचेत हो गयी। सारा घर रो रहा था। महरियाँ, महराजिनें सब उसकी प्रशंसा कर रही थीं कि स्त्री नहीं, देवी थी।

रधिया—इतने दिन टहल करते हुए, पर कभी कठोर वचन न कहा।

महराजिन—हमको बेटी की भाँति मानती थीं, भोजन कैसा ही बनाके रख दूँ, पर कभी नाराज नहीं हुई। जब बातें करतीं, मुसकुरा के। महाराज जब आते तो उन्हें जरूर सीधा दिलवाती थीं।

सब इसी प्रकार की बातें कर रहे थे। दोपहर का समय हुआ। महराजिन ने भोजन बनाया; परन्तु खाता कौन? बहुत हठ करने पर मुन्शीजी गये और नाम करके चले आये। प्रताप चौके पर गया भी नहीं। विरजन और सुवामा को भूख कहाँ? सुशीला कभी विरजन को प्यार करती, कभी सुवामा को गले लगाती, कभी प्रताप को चूमती और कभी अपनी बीती कह-कहकर रोती। तीसरे पहर उसने सब नौकरों को बुलाया और उनसे अपराध क्षमा कराया। जब वे सब चले गये तब सुशीला ने सुवामा से कहा—'बहिन, प्यास बहुत लगती है। उनसे कह दो अपने हाथ से थोड़ा-सा पानी पिला दें।' मुन्शीजी पानी लाये। सुशीला ने कठिनता से एक घूँट पानी कण्ठ से नीचे उतारा और ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी ने उसे अमृत पिला दिया हो। उसका मुख उज्ज्वल हो गया। आँखों में जल भर आया। पति के गले में हाथ डालकर बोली—'मैं ऐसी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम्हारी गोद में मरती हूँ।' यह कहकर वह चुप हो गयी, मानो कोई बात करना ही चाहती है, पर सङ्कोच से नहीं कहती। थोड़ी देर पश्चात् उसने फिर मुन्शीजी का हाथ पकड़ लिया और कहा—'यदि तुमसे कुछ माँगूँ, तो दोगे?'

मुन्शीजी ने विस्मित होकर कहा—तुम्हारे लिए माँगने की आवश्यकता है? निःसङ्कोच कहो।

सुशीला—तुम मेरी बात कभी नहीं टालते थे।

मुन्शीजी—मरते दम तक कभी न टालूँगा।

सुशीला—डर लगता है, कहीं न मानो तो

मुन्शीजी—तुम्हारी बात और मैं न मानूँ?

सुशीला—मैं तुमको न छोड़ूँगी। एक बात बतला दो—सिल्ली (सुशीला)

मर जायगी, तो उसे भूल जाओगे ?

मुन्शीजी—ऐसी बातें न कहो, देखो विरजन रोती है।

सुशीला—बतलाओ, मुझे भूलोगे तो नहीं ?

मुन्शीजी—कभी नहीं।

सुशीला ने अपने सूखे कपोल मुन्शीजी के अधरों पर रख दिये और दोनों बाहें उनके गले में डाल दीं। फिर विरजन को निकट बुलाकर धीरे-धीरे समझाने लगी—'देखो बेटी! लालाजी का कहना हर घड़ी मानना, उनकी सेवा मन लगाकर करना। गृह का सारा भार अब तुम्हारे ही माथे है। अब तुम्हें कौन सँभालेगा ?' यह कहकर उसने स्वामी की ओर करुणा-पूर्ण नेत्रों से देखा और कहा—'मैं अपने मन की बात नहीं कहने पायी, जी डूबा जाता है।'

मुन्शीजी—तुम व्यर्थ असमंजस में पड़ी हो।

सुशीला—तुम मेरे हो कि नहीं ?

मुन्शीजी—तुम्हारा और आमरण तुम्हारा।

सुशीला—ऐसा न हो कि तुम मुझे भूल जाओ और जो वस्तु मेरी थी वह अन्य के हाथ में चली जाय।

मुन्शीजी—(संकेत समझकर) इसकी चर्चा ही क्यों करती हो ? जब तक जीऊँगा, तुम्हारा ही रहूँगा।

सुशीला ने विरजन को फिर बुलाया और उसे वह छाती से लगाना ही चाहती थी कि मूर्च्छित हो गयी। विरजन और प्रताप रोने लगे। मुन्शीजी ने काँपते हुए सुशीला के हृदय पर हाथ रखा। साँस धीरे-धीरे चल रही थी। महराजिन को बुलाकर कहा—'अब इन्हें भूमि पर लिटा दो।' यह कहकर रोने लगे। महराजिन और सुवामा ने मिलकर सुशीला को पृथ्वी पर लिटा दिया। तपेदिक ने हड्डियाँ तक सुखा डाली थीं।

अँधेरा हो चला था। सारे गृह में शोकमय और भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। रोनेवाले रोते थे, पर कण्ठ बाँध-बाँधकर। बातें होती थीं,

पर दवे स्वरों से। सुशीला भूमि पर पड़ी हुई थी। वह सुकुमार अङ्ग, जो कभी माता के अङ्क में पला, कभी प्रेमाङ्क में पौढा, कभी फूलों की सेज पर सोया, इस समय भूमि पर पड़ा हुआ था। अभी तक नाड़ी मन्द-मन्द गति से चल रही थी; मुन्शीजी शोक और निराशा-नद में मग्न उसके सिर की ओर बैठे हुए थे। अकस्मात् उसने सिर उठाया और दोनो हाथों से मुशीजी का चरण पकड़ लिया। प्राण उड़ गये। दोनों कर उनके चरण का मण्डल बाँधे ही रहे। यह उसके जीवन की अन्तिम क्रिया थी।

रोनेवाले! रोओ; क्योंकि तुम रोने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते हो? तुम्हें इस समय कोई कितनी ही सान्त्वना दे, पर तुम्हारे नेत्र अश्रु-प्रवाह को न रोक सकेंगे। रोना तुम्हारा कर्तव्य है। जीवन में रोने के अवसर कदाचित् ही मिलते हैं। क्या इस समय तुम्हारे नेत्र शुष्क हो जायेंगे? आँसुओं के तार बँधे हुए थे, सिसकियों के शब्द आ रहे थे कि महराजिन दीपक जलाकर घर में लायी। थोड़ी ही देर पहिले सुशीला के जीवन का दीपक बुझ चुका था।

———

[११]

विरजन की विदा

राधाचरण रुड़की कॉलेज से निकलते ही मुरादावाद के इन्जीनियर नियुक्त हुए और चन्द्रा उनके संग मुरादावाद को चली। प्रेमवती ने बहुत रोकना चाहा, पर जानेवाले को कौन रोक सकता है? सेवती कव की ससुराल जा चुकी थी। यहाँ घर मे अकेली प्रेमवती रह गयी। उसके सिर घर का काम-काज पड़ा। निदान यह राय हुई कि विरजन के गौने का सन्देशा भेजा जाय। डिप्टी साहब सहमत न थे, परन्तु घर के कामों में प्रेमवती ही की बात चलती थी।

सञ्जीवनलाल ने सन्देशा स्वीकार कर लिया, कुछ दिनों से वे तीर्थ-

यात्रा का विचार कर रहे थे। उन्होंने क्रम-क्रम से सासारिक सम्बन्ध त्याग कर दिये थे। दिन-भर घर मे आसन मारे भगवद्गीता और योगवासिष्ठ आदि ज्ञान-सम्बन्धिनी पुस्तकों का अध्ययन किया करते थे। सन्ध्या होते ही गङ्गा-स्नान को चले जाते। वहाँ से रात्रि गये लौटते और थोड़ा-सा भोजन करके सो जाते। प्राय प्रतापचन्द्र भी उनके संग गंगा-स्नान को जाता। यद्यपि उसकी आयु सोलह वर्ष की भी न थी, पर कुछ तो निज स्वभाव, कुछ पैतृक संस्कार और कुछ संगति के प्रभाव से उसे अभी से वैज्ञानिक विषयों पर मनन और विचार करने मे बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। ज्ञान तथा ईश्वर-सम्बन्धिनी बातें सुनते-सुनते उसकी प्रवृति भी भक्ति की ओर हो चली थी, और किसी-किसी समय मुशीजी से ऐसे सूक्ष्म विषयों पर विवाद करता कि वे विस्मित हो जाते। वृजरानी पर सुवामा की शिक्षा का उससे भी गहरा प्रभाव पड़ा था, जितना कि प्रतापचन्द्र पर मुन्शीजी की संगति और शिक्षा का। उसका पन्द्रहवाँ वर्ष था। इस आयु मे मन में नयी उमंगें तरगित होती हैं और चितवन में सरलता और चंचलता की जगह मनोहर रसीलापन बरसने लगता है। परन्तु वृजरानी अभी वही भोली-भाली बालिका थी। उसके मुख पर हृदय के पवित्र भाव झलकते थे और वार्तालाप में मनोहारिणी मधुरता उत्पन्न हो गयी थी। प्रात काल उठती और सबसे प्रथम मुन्शीजी का कमरा साफ करके, उनके पूजा-पाठ की सामग्री यथोचित रीति से रख देती। फिर रसोई के धन्धे में लग जाती। दोपहर का समय उसके लिखने-पढने का था। सुवामा पर उसका जितना प्रेम और जितनी श्रद्धा थी, उतनी अपनी माता पर भी न रही होगी। उसकी इच्छा विरजन के लिए आज्ञा से कम न थी।

सुवामा की तो सम्मति थी कि अभी विदाई न की जाय। पर मुन्शीजी के हठ से विदाई की तैयारियाँ होने लगीं। ज्यों-ज्यों वह विपत्ति की घड़ी निकट आती, विरजन की व्याकुलता बढती जाती थी। रात-दिन रोया करती। कभी पिता के चरणों पड़ती और कभी सुवामा के पदों मे लिपट

जाती। पर विवाही कन्या पराये घर की हो जाती है, उस पर किसी का क्या अधिकार ?

प्रतापचन्द्र और विरजन कितने ही दिनों तक भाई-बहन की भाँति एक साथ रहे। पर अब विरजन की आँखें उसे देखते ही नीचे को झुक जाती थीं। प्रताप की भी यही दशा थी। घर में बहुत कम आता था। आवश्यकतावश आता, तो इस प्रकार दृष्टि नीचे किये हुए और सिमटे हुए, मानो दुलहिन है। उसकी दृष्टि में वह प्रेम-रहस्य छिपा हुआ था, जिसे वह किसी मनुष्य—यहाँ तक कि विरजन पर भी प्रकट नहीं करना चाहता था।

एक दिन सन्ध्या का समय था। विदाई को केवल तीन दिन रह गये थे। प्रताप किसी काम से भीतर गया और अपने घर में लैम्प जलाने लगा कि विरजन आयी। उसका अंचल आँसुओं से भींगा हुआ था। उसने आज दो वर्ष के अनन्तर प्रताप की ओर सजल-नेत्र से देखा और कहा—लल्लू! मुझसे कैसे सहा जायगा ?

प्रताप के नेत्रों में आँसू न आये। उसका स्वर भारी न हुआ। उसने सुदृढ भाव से कहा—ईश्वर तुम्हें धैर्य धारण करने की शक्ति देंगे।

विरजन का सिर झुक गया। आँखें पृथ्वी में गड़ गयीं और एक सिसकी ने हृदय-वेदना की वह अगाध कथा वर्णन की, जिसका होना वाणी द्वारा असम्भव था।

विदाई का दिन लड़कियों के लिए कितना शोकमय होता है। बचपन की सब सखियों-सहेलियों, माता-पिता, भाई-बन्धु से नाता टूट जाता है। यह विचार कि मैं फिर भी इस घर में आ सकूँगी, उसे तनिक भी संतोष नहीं देता। क्योंकि अब वह आयेगी तो अतिथिभाव से आयेगी। उन लोगों से विलग होना, जिनके साथ जीवनोद्यान में खेलना और स्वातन्त्र्य-वाटिका में भ्रमण करना उपलब्ध हुआ हो, उसके हृदय को विदीर्ण कर देता है। आज से उसके सिर पर ऐसा भार पड़ता है, जो आमरण उठाना पड़ेगा।

विरजन का शृंगार किया जा रहा था। नाइन उसके हाथों व पैरों में मेंहदी रचा रही थी। कोई उसके बाल गूँथ रही थी। कोई जूड़े में सुगंध बसा रही थी। पर जिसके लिए ये तैयारियाँ हो रही थीं, वह भूमि पर मोती के दाने बिखेर रही थी। इतने में बाहर से सन्देशा आया कि मुहूर्त टला जाता है; जल्दी करो। सुवामा पास खड़ी थी। विरजन उसके गले लिपट गयी और अश्रु-प्रवाह का आतंक, जो अब तक दबी हुई अग्नि की नाईं सुलग रहा था, अकस्मात् ऐसा भड़क उठा मानों किसी ने आग में तेल डाल दिया है।

थोड़ी देर में पालकी द्वार पर आयी। विरजन पड़ोस की स्त्रियों से गले मिली। सुवामा के चरण छुये, तब दो-तीन स्त्रियों ने उसे पालकी के भीतर बिठा दिया। उधर पालकी उठी, इधर सुवामा मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ी, मानो उसके जीते ही कोई उसका प्राण निकालकर लिये जाता था। घर सूना हो गया। सैकड़ों स्त्रियों का जमघट था, परन्तु एक विरजन के बिना घर फाड़े खाता था।

---

[१२]

कमलाचरण के मित्र

जैसे सिन्दूर की लालिमा से माँग रच जाती है, वैसे ही विरजन के आने से प्रेमवती के घर की रौनक बढ़ गयी। सुवामा ने उसे ऐसे गुण सिखाये थे कि जिसने उसे देखा, मोह गया। यहाँ तक कि सेवती की सहेली रानी को भी प्रेमवती के सम्मुख स्वीकार करना पड़ा कि तुम्हारी छोटी बहू ने हम सबों का रंग फीका कर दिया। सेवती उससे दिन-दिन-भर बातें करती और उसका जी न ऊबता। उसे अपने गाने पर अभिमान था, पर इस क्षेत्र में भी विरजन बाजी ले गयी

अब कमलाचरण के मित्रों ने आग्रह करना शुरू किया कि भाई, नई

दुलहिन घर में लाये हो, कुछ मित्रों की भी फिक्र करो। सुनते हैं, परम सुन्दरी स्त्री पाये हो।

कमलाचरण को रुपए तो ससुराल से मिले ही थे, जेब खनखनाकर बोले—अजी, दावत लो। शराबें उड़ाओ। हाँ, बहुत शोर-गुल न मचाना, नहीं तो कहीं भीतर खबर होगी तो समझेंगे कि ये गुण्डे हैं। जब से वह घर में आयी है, मेरे तो होश उड़े हुए हैं। सुनता हूँ, अंग्रेजी, फ़ारसी, सस्कृत, अल्लम-गल्लम सभी घोटे बैठी है। डरता हूँ, कहीं अंग्रेजी में कुछ पूछ बैठी, या फारसी में बातें करने लगी, तो मुँह ताकने के सिवाय और क्या करूँगा? इसलिए अभी जी बचाता फिरता हूँ।

यों तो कमलाचरण के मित्रों की सख्या अपरिमित थी। नगर के जितने कबूतरबाज, कनकौएबाज गुण्डे थे सब उसके मित्र थे; परन्तु सच्चे मित्रों में केवल पाँच महाशय थे और सभी-के-सभी फाकेमस्त छिछोरे थे। इसमें सबसे अधिक शिक्षित मियाँ मजीद थे। ये कचहरी में अरायजनवीसी किया करते थे। जो कुछ मिलता, वह सब शराब की भेंट करते। दूसरा नबर हमदखाँ का था। इन महाशय ने बहुत पैतृक सम्पत्ति पायी थी, परन्तु तीन वर्ष में सब कुछ विलास मे लुटा दी। अब यह ढग था कि सायङ्काल को सज-धजकर गलियों में धूल फाँकते फिरते थे। तीसरे हज़रत सैयदहुसेन थे—पक्के जुआरी, नल के परम भक्त, सैकड़ों के दाव लगानेवाले, स्त्री के गहनों पर हाथ माँजना तो नित्य का इनका काम था। शेष दो महाशय रामसेवकलाल और चदूलाल कचहरी मे नौकर थे। वेतन कम, पर ऊपरी आमदनी बहुत थी। आधी सुरापान की भेंट करते, आधी भोग-विलास मे उड़ाते। घर के लोग भूखे मरें या भिक्षा माँगें, इन्हें केवल अपने सुख से काम था।

सलाह तो हो चुकी थी। आठ बजे जब डिप्टी साहब लेटे तो ये पाँचों जने एकत्र हुए और शराब के दौर चलने लगे। पाँचों पीने में अभ्यस्त थे। जब नशे का रग जमा, तो बहक-बहककर बातें करने लगे।

मजीद—क्यों भाई कमलाचरण, सच कहना, स्त्री को देखकर जी खुश हो गया कि नहीं?

कमला—अब आप बहकने लगे, क्यों?

रामसेवक—बतला क्यों नहीं देते, इसमें झेंपने की कौन-सी बात है?

कमला—बतला क्या अपना सिर दूँ, कभी सामने जाने का संयोग भी तो हुआ हो। कल किवाड़ की दरार से एकबार देख लिया था, अभी तक चित्र आँखों पर फिर रहा है।

चन्दूलाल—मित्र, तुम बड़े भाग्यवान हो।

कमला—ऐसा व्याकुल हुआ कि गिरते-गिरते बचा। बस, परी समझ लो।

मजीद—तो भई, यह दोस्ती किस दिन काम आयेगी। एक नज़र हमें भी दिखाओ।

सैयद—बेशक दोस्ती के यही मानी हैं कि आपस में कोई पर्दा न रहे।

चन्दूलाल—दोस्ती में क्या पर्दा? अंग्रेज़ों को देखो, बीबी डोली से उतरी नहीं कि यार-दोस्त हाथ मिलाने लगे।

रामसेवक—मुझे तो बिना देखे चैन न आयेगा।

कमला—(एक घप लगाकर) जीभ काट ली जायगी, समझे?

रामसेवक—कोई चिन्ता नहीं, आँखें तो देखने को रहेंगी।

मजीद—भई कमलाचरण, बुरा मानने की बात नहीं, अब इस वक्त तुम्हारा फर्ज है कि दोस्तों की फरमाईश पूरी करो।

कमला—अरे! तो मैं 'नहीं' कब करता हूँ?

चन्दूलाल—वाह मेरे शेर! ये ही मर्दों की-सी बातें हैं। तो हम लोग बन-ठनकर आ जायँ, क्यों?

कमला—जी, ज़रा मुँह में कालिख लगा लीजिएगा। बस, इतना बहुत है।

सैयद—तो आज ही ठहरी न?

इधर तो शराब उड़ रही थी, उधर विरजन पलँग पर लेटी हुई विचार में मग्न हो रही थी। बचपन के दिन भी कैसे अच्छे होते हैं! यदि वे दिन एक बार फिर आ जाते! आह! कैसा मनोहर जीवन था! संसार प्रेम और प्रीति की खान था। क्या वह कोई अन्य संसार था? क्या उन दिनों संसार की वस्तुएँ बहुत सुन्दर होती थीं? इन्हीं विचारों में आँखें झपक गयीं और बचपन की एक घटना आँखों के सामने आ गयी। लल्लू ने उसकी गुड़िया मरोड़ दी। उसने उसकी किताब के दो पन्ने फाड़ दिये। तब लल्लू ने उसकी पीठ में जोर से चुटकी ली, बाहर भागा। वह रोने लगी और लल्लू को कोस रही रही थी कि सुवामा उसका हाथ पकड़े आयी और बोली—'क्यों बेटी, इसने तुम्हें मारा है न? यह बहुत मार-मारकर भागता है। आज इसकी खबर लेती हूँ; देखूँ, कहाँ मारा है?' लल्लू ने डबडबायी आँखों से विरजन की ओर देखा। तब विरजन ने मुसकराकर कहा—'मुझे इन्होंने कहाँ मारा—ये मुझे कभी नहीं मारते।' यह कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। अपने हिस्से की मिठाई खिलायी और फिर दोनों मिलकर खेलने लगे। वह समय अब कहाँ?

रात्रि अधिक बीत गयी थी, अचानक विरजन को जान पड़ा कि कोई सामनेवाली दीवार धमधमा रहा है। उसने कान लगाकर सुना। बराबर शब्द आ रहे थे। कभी रुक जाते, फिर सुनायी देते। थोड़ी देर में मिट्टी गिरने लगी। डर के मारे विरजन के हाथ-पाँव फूलने लगे। कलेजा धक्-धक् करने लगा। जी कड़ा करके उठी और महराजिन को झिंझोड़ने लगी। घिग्घी बँधी हुई थी। इतने में मिट्टी का एक बड़ा ढेला सामने गिरा। महराजिन चौंककर उठ बैठी। दोनों को विश्वास हुआ कि चोर आये हैं। महराजिन चतुर स्त्री थी। समझी कि चिल्लाऊँगी तो जाग हो जायगी। उसने सुन रखा था कि चोर पहिले सेंध में पाँव डालकर देखते हैं, तब आप घुसते हैं। उसने एक डण्डा उठा लिया कि जब पैर डालेगा तो ऐसा तानकर मारूँगी कि टाँग टूट जायगी। पर चोर ने पाँव के स्थान पर सिर

सेंध में से निकाला। महराजिन घात में थी ही, डण्डा चला दिया। खटके की आवाज़ आयी। चोर ने झट सिर खींच लिया और यह कहता हुआ सुनायी दिया—'उफ् मार डाला, खोपड़ी भन्ना गयी!' फिर कई मनुष्यों के हँसने की ध्वनि आयी और तत्पश्चात् सन्नाटा हो गया। इतने में और लोग भी जाग पड़े और शेष रात्रि बातचीत में व्यतीत हुई।

प्रात काल जब कमलाचरण घर में आये, तो नेत्र लाल थे और सिर में सूजन थी। महाराजिन ने निकट जाकर देखा, फिर आकर विरजन से कहा—बहू, एक बात कहूँ। बुरा तो न मानोगी?

विरजन—बुरा क्यों मानूँगी; कहो, क्या कहती हो?

महराजिन—रात जो सेंध पड़ी थी, वह चोरों ने नहीं लगायी थी।

विरजन—फिर कौन था?

महराजिन—घर ही के भेदी थे। बाहरी कोई न था।

विरजन—क्या किसी कहार की शरारत थी?

महराजिन—नहीं; कहारों मे ऐसा कोई नहीं है।

विरजन—फिर कौन था, स्पष्ट क्यों नहीं कहती?

महराजिन—मेरी जान मे तो छोटे बाबू थे। मैंने जो लकड़ी मारी थी, वह उनके सिर में लगी। सिर फूला हुआ है।

इतना सुनते ही विरजन की भृकुटी चढ़ गयी। मुखमण्डल अरुण हो आया। क्रुद्ध होकर बोली—महराजिन, होश सँभालकर बातें करो। तुम्हें यह कहते हुए लाज नहीं आती? तुम्हें मेरे सम्मुख ऐसी बात कहने का साहस कैसे हुआ? साक्षात् मेरे ऊपर कलंक का टीका लगा रही हो! तुम्हारे बुढ़ापे पर दया आती है, नहीं तो अभी तुम्हें यहाँ से खड़े-खड़े निकलवा देती। तब तुम्हें विदित होता कि जीभ को वश मे न रखने का क्या फल होता है! यहाँ से उठ जाओ, मुझे तुम्हारा मुँह देखकर ज्वर-सा चढ़ रहा है। तुम्हें इतना न समझ पड़ा कि मै कैसा वाक्य मुँह से निकाल रही हूँ। उन्हें ईश्वर ने क्या नहीं दिया है? सारा घर उनका है।

इधर तो शराब उड़ रही थी, उधर विरजन पलँग पर लेटी हुई विचार में मग्न हो रही थी। बचपन के दिन भी कैसे अच्छे होते हैं। यदि वे दिन एक बार फिर आ जाते। आह! कैसा मनोहर जीवन था! संसार प्रेम और प्रीति की खान था। क्या वह कोई अन्य ससार था? क्या उन दिनों ससार की वस्तुएँ बहुत सुन्दर होती थीं? इन्हीं विचारों में आँखें झपक गयीं और बचपन की एक घटना आँखों के सामने आ गयी। लल्लू ने उसकी गुड़िया मरोड़ दी। उसने उसकी किताब के दो पन्ने फाड़ दिये। तब लल्लू ने उसकी पीठ में जोर से चुटकी ली, बाहर भागा। वह रोने लगी और लल्लू को कोस रही रही थी कि सुवामा उसका हाथ पकड़े आयी और बोली—'क्यों बेटी, इसने तुम्हें मारा है न? यह बहुत मार-मारकर भागता है। आज इसकी खबर लेती हूँ, देखूँ, कहाँ मारा है?' लल्लू ने डबडबायी आँखों से विरजन की ओर देखा। तब विरजन ने मुसकराकर कहा—'मुझे इन्होंने कहाँ मारा—ये मुझे कभी नहीं मारते।' यह कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। अपने हिस्से की मिठाई खिलायी और फिर दोनों मिलकर खेलने लगे। वह समय अब कहाँ?

रात्रि अधिक बीत गयी थी, अचानक विरजन को जान पड़ा कि कोई सामनेवाली दीवार धमधमा रहा है। उसने कान लगाकर सुना। बराबर शब्द आ रहे थे। कभी रुक जाते, फिर सुनायी देते। थोड़ी देर में मिट्टी गिरने लगी। डर के मारे विरजन के हाथ-पाँव फूलने लगे। कलेजा धक्-धक् करने लगा। जी कड़ा करके उठी और महराजिन को झिझोड़ने लगी। घिग्घी बँधी हुई थी। इतने में मिट्टी का एक बड़ा ढेला सामने गिरा। महराजिन चौंककर उठ बैठी। दोनों को विश्वास हुआ कि चोर आये हैं। महराजिन चतुर स्त्री थी। समझी कि चिल्लाऊँगी तो जाग हो जायगी। उसने सुन रखा था कि चोर पहिले सेंध में पाँव डालकर देखते हैं, तब आप घुसते हैं। उसने एक डण्डा उठा लिया कि जब पैर डालेगा तो ऐसा तानकर मारूँगी कि टाँग टूट जायगी। पर चोर ने पाँव के स्थान पर सिर

ठानी है ?' यह कहकर रोने लगी। विरजन को भी सन्देह हो रहा था कि अवश्य इनकी कुछ और नीयत है; नहीं तो यह क्रोध क्यों ? यद्यपि कमला दुर्व्यसनी था, दुराचारी था, कुचरित्र था; परन्तु इन सब दोषों के होते हुए भी उसमें एक बड़ा गुण भी था, जिसकी कोई स्त्री अवहेलना नहीं कर सकती। उसे वृजरानी से सच्ची प्रीति थी। और इसका गुप्त रीति से कई वार परिचय भी मिल गया था। यही कारण था जिसने विरजन को इतना गर्वशील बना दिया था। उसने कागज निकाला और यह पत्र बाहर भेजा।

'प्रियतम,

यह कोप किस पर है ? केवल इसी लिए कि मैंने दो तीन कनकौए फाड़ डाले ? यदि मुझे ज्ञात होता कि आप इतनी-सी वात पर ऐसे क्रुद्ध हो जायेंगे, तो कदापि उन पर हाथ न लगाती। पर अब तो अपराध हो गया, क्षमा कीजिये। यह पहला कसूर है।

आपकी—

वृजरानी'

कमलाचरण यह पत्र पाकर ऐसा प्रमुदित हुआ, मानो सारे जगत् की सम्पत्ति प्राप्त हो गयी। उत्तर देने की इच्छा हुई, पर लेखनी ही नहीं उठती थी। न प्रशस्ति मिलती है, न प्रतिष्ठा; न आरम्भ का विचार आता, न समाप्ति का। बहुत चाहते हैं कि भावपूर्ण लहलहाता हुआ पत्र लिखूँ, पर बुद्धि तनिक भी नहीं दौड़ती। आज प्रथम वार कमलाचरण को अपनी मूर्खता और निरक्षरता पर रोना आया। शोक ! मैं एक सीधा-सा पत्र भी नहीं लिख सकता। इस विचार से वह रोने लगा और घर के द्वार सब बन्द कर लिये कि कोई देख न ले।

तीसरे पहर जब मुन्शी श्यामाचरण घर पर आये, तो सबसे पहली वस्तु जो उनकी दृष्टि में पड़ी, वह आग का अलाव था। विस्मित होकर नौकरों से पूछा—यह अलाव कैसा है ?

नौकरों ने उत्तर दिया—सरकार ! दरबा जल रहा है।

मुन्शीजी—(झुड़ककर) इसे क्यों जलाते हो ? अब कबूतर कहाँ रहेंगे ?

कहार—छोटे बाबू की आज्ञा है कि सब दरबे जला दो ।

मुन्शीजी—कबूतर कहाँ गये ?

कहार—सब उड़ा दिये, एक भी नहीं रखा । कनकौए सब फाड़ डाले, डोर जला दी, बड़ा नुकसान किया ।

कहारों ने अपनी समझ में मार-पीट का बदला लिया । बेचारे समझे कि मुन्शीजी इस नुकसान के लिये कमलाचरण को बुरा-भला कहेंगे । परन्तु मुन्शीजी ने यह समाचार सुना तो भौंचक्के-से रह गये । उन्हीं जानवरों पर कमलाचरण प्राण देता था, आज अकस्मात् क्या कायापलट हो गयी ? इसमें अवश्य कुछ भेद है । कहार से कहा—बच्चे को भेज दो ।

एक मिनट में कहार ने आकर कहा—हजूर, दरवाजा भीतर से बन्द है । बहुत खटखटाया, बोलते ही नहीं ।

इतना सुनना था कि मुन्शीजी का रुधिर शुष्क हो गया । झट सन्देह हुआ कि बच्चे ने विष खा लिया । आज एक जहर खिलाने का मुकदमा फैसल किया था । नगे पाँव दौड़े और बन्द कमरे के किवाड़ पर बलपूर्वक लात मारी और कहा—'बच्चा ! बच्चा !' यह कहते-कहते गला रुँध गया । कमला पिता की वाणी पहिचानकर झट उठा और अपने आँसू पोंछकर किवाड़ खोल दिया । परन्तु उसे कितना आश्चर्य हुआ, जब मुन्शीजी ने धिक्कार, फटकार के बदले उसे हृदय से लगा लिया और व्याकुल होकर पूछा—'बच्चा ! तुम्हें मेरे सिर की कसम, बता दो तुमने कुछ खा तो नहीं लिया ?' कमलाचरण ने इस प्रश्न का अर्थ समझने के लिये मुन्शीजी की ओर आँखें उठायीं तो उनमें जल भरा था । मुन्शीजी को पूरा विश्वास हो गया कि अवश्य विपत्ति का सामना हुआ । एक कहार से कहा—'डॉक्टर साहब को बुला ला । कहना, अभी चलिये ।'

अब जाकर दुर्बुद्धि कमला पिता की इस घबराहट का अर्थ समझा । दौड़कर उनसे लिपट गया और बोला—आपको भ्रम हुआ है । आपके

सिर की कसम, मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

परन्तु डिप्टी साहब की बुद्धि स्थिर न थी; समझे, यह मुझे रोककर विलम्ब कराना चाहता है। विनीत भाव से बोले—बच्चा! ईश्वर के लिए मुझे छोड़ दो, मैं सन्दूक से एक औषधि ले आऊँ। मैं क्या जानता था कि तुम इस नीयत से छात्रालय में जा रहे हो।

कमला—ईश्वर-साक्षी से कहता हूँ, मैं बिलकुल अच्छा हूँ। मैं ऐसा लज्जावान् होता, तो इतना मूर्ख क्यों बना रहता? आप व्यर्थ ही डाक्टर साहब को बुला रहे हैं।

मुन्शीजी—(कुछ-कुछ विश्वास करके) तो किवाड़ बन्द करके क्या करते थे?

कमला—भीतर से एक पत्र आया था, उसका उत्तर लिख रहा था।

मुन्शीजी—और यह कबूतर वगैरा क्यों उड़ा दिये?

कमला—इसीलिए कि निश्चिन्ततापूर्वक पढ़ूँ। इन्हीं बखेड़ों में मेरा समय नष्ट होता था। आज मैंने इनका अन्त कर दिया। अब आप देखेंगे कि मैं पढ़ने में कैसा जी लगाता हूँ।

अब जाके डिप्टी साहब की बुद्धि ठिकाने आयी। भीतर आकर प्रेमवती से समाचार पूछा तो उसने सारी रामायण कह सुनायी। उन्होंने जब सुना कि विरजन ने क्रोध में आकर कमला के कनकौए फाड़ डाले और चर्खियाँ तोड़ डालीं तो हँस पड़े और कमला के विनोद के सर्वनाश का भेद समझ में आ गया। बोले—जान पड़ता है कि बहू इन लालाजी को सीधा करके छोड़ेगी।

---

[१४]

भ्रम

वृजरानी की विदाई के पश्चात् सुवामा का घर ऐसा सूना हो गया, मानो पिंजरे से सुआ उड़ गया। वह इस घर का दीपक और इस शरीर

का प्राण थी। घर वही है, पर चारों ओर उदासी छायी हुई है। रहनेवाले वे ही हैं; पर सबके मुख मलिन और नेत्र ज्योति-हीन हो रहे हैं। वाटिका वही है, पर ऋतु पतझड़ की है। विदाई के एक मास पश्चात् मुन्शी सजीवनलाल भी तीर्थयात्रा करने चले गये। धन-सम्पत्ति सब प्रताप को समर्पित कर दी। अपने सग मृगछाला, भगवद्गीता और कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ न ले गये।

प्रतापचन्द्र की प्रेमाकाक्षा बड़ी प्रबल थी। पर इसके साथ ही उसे दमन की असीम शक्ति भी प्राप्त थी। घर की एक-एक वस्तु उसे विरजन का स्मरण कराती रहती थी। वह विचार एक क्षण के लिए भी दूर न होता था कि यदि विरजन मेरी होती, तो ऐसे सुख से जीवन व्यतीत होता। परन्तु इस विचार को वह हटाता रहता था। पढने बैठता तो पुस्तक खुली रहती और ध्यान अन्यत्र जा पहुँचता। भोजन करने बैठता तो विरजन का चित्र नेत्रों में फिरने लगता। प्रेमाग्नि को दमन की शक्ति से दबाते-दबाते उसकी अवस्था ऐसी हो गयी, मानो वर्षों का रोगी है। प्रेमियों को अपनी अभिलाषा पूरी होने की आशा हो या न हो, परन्तु वे मन-ही-मन अपनी प्रेमिकाओं से मिलाप का आनन्द उठाते रहते हैं। वे भाव-ससार में अपने प्रेम-पात्र से वार्तालाप करते हैं, उसे छेड़ते हैं, उससे रूठते हैं, उसे मनाते हैं और इन भावों से उन्हें तृप्ति होती है और मन को एक सुखद और रसमय कार्य मिल जाता है। परन्तु यदि कोई शक्ति उन्हें इस भावोद्यान की सैर करने से रोके, यदि कोई शक्ति उन्हें ध्यान मे भी उस प्रियतमा का चित्र न देखने दे, तो उन अभागे प्रेमियों की क्या दशा होगी? प्रताप इन्हीं अभागों मे से था। इसमें सन्देह नहीं कि यदि वह चाहता तो सुखद भावों का आनन्द भोग सकता था। भाव-ससार का भ्रमण अतीव सुखमय होता है, पर कठिनता तो यह थी कि वह विरजन के ध्यान को भी कुत्सित वासनाओं से पवित्र रखना चाहता था। उसकी शिक्षा ऐसा पवित्र नियमों से हुई थी और उसे ऐसे पवित्रात्माओं और नीतिपरायण मनुष्यों

की संगति से लाभ उठाने के अवसर मिले थे कि उसकी दृष्टि में विचार की पवित्रता की भी उतनी ही प्रतिष्ठा थी जितनी आचार की पवित्रता की। यह कब सम्भव था कि वह विरजन को—जिसे कई बार बहिन कह चुका था और जिसे अब भी बहिन समझने का प्रयत्न करता रहता था—ध्यानावस्था में भी ऐसे भावों का केन्द्र बनाता, जो कुवासनाओं से भले ही शुद्ध हों, पर मन के दूषित आवेगों से मुक्त नहीं हो सकते थे। जब तक मुन्शी संजीवनलाल विद्यमान थे, उसका कुछ-न-कुछ समय उनके संग, ज्ञान और धर्म-चर्चा में कट जाता था, जिससे आत्मा को सन्तोष होता था। परन्तु उनके चले जाने के पश्चात् आत्म-सुधार का यह अवसर भी जाता रहा।

सुवामा उसे यों मलिन-मन पाती तो उसे बहुत दुःख होता। एक दिन उसने कहा—'यदि तुम्हारा चित्त न लगता हो, तो प्रयाग चले जाओ, वहाँ स्यात् तुम्हारा जी लग जाय।' यह विचार प्रताप के मन में भी कई बार उत्पन्न हुआ था; परन्तु इस भय से कि माता को यहाँ अकेले रहने में कष्ट होगा, उसने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया था। माता का आदेश पाकर इरादा पक्का हो गया। यात्रा की तैयारियाँ करने लगा, प्रस्थान का दिन निश्चित हो गया। अब सुवामा की यह दशा है कि जब देखिये, प्रताप को परदेश में रहने-सहने की शिक्षाएँ दे रही है—'बेटा, देखो किसी से झगड़ा मत मोल लेना। झगड़ने की तुम्हारी वैसे भी आदत नहीं है, परन्तु समझा देती हूँ। परदेश की बात है; फूँक-फूँककर पग धरना। खाने-पीने में असंयम न करना; तुम्हारी यह बुरी आदत है कि जाड़ों में सायंकाल ही सो जाते हो, फिर कोई कितना ही बुलाये, पर जागते ही नहीं। यह स्वभाव यदि परदेश में भी बना रहे तो तुम्हें साँझ का भोजन काहे को मिलेगा? दिन को थोड़ी देर के लिए सो लिया करना। तुम्हारी आँखों में तो दिन को जैसे नींद ही नहीं आती।' उसे जब अवकाश मिलता, बेटे को ऐसे ही समयोचित शिक्षाएँ दिया करती।

निदान प्रस्थान का दिन आ ही गया। गाड़ी दस बजे दिन को

छूटती थी। प्रताप ने सोचा—विरजन से भेंट कर लूँ। परदेश जा रहा हूँ। फिर न जाने कब भेंट हो। चित्त को उत्सुक किया। माता से कह बैठा। सुवामा बहुत प्रसन्न हुई। एक थाल मे मोदक, समोसे और दो-तीन प्रकार के मुरब्बे रखकर रधिया को दिये कि लल्लू के संग जा। प्रताप ने बाल बनवाये, कपड़े बदले। चलने को तो चला, पर ज्यों-ज्यों पग आगे उठता है, दिल बैठता जाता है। भाँति-भाँति के विचार आ रहे हैं। विरजन न जाने मन में क्या समझे, क्या न समझे। चार महीने बीत गये, उसने एक चिट्ठी भी तो मुझे अलग से नहीं लिखी। फिर क्योंकर कहूँ कि मेरे मिलने से उसे प्रसन्नता होगी। अजी, अब उसे तुम्हारी चिंता ही क्या है? तुम मर भी जाओ तो वह आँसू न बहाये। यहाँ की बात और थी, वहाँ की बात और है। और मुझे यह क्यों सूझी कि कपड़े बदल-कर आया। यह अवश्य उसकी आँखों में खटकेगा। कहीं यह न समझे कि लालाजी बन-ठनकर मुझे रिझाने आये हैं। इसी सोच-विचार में बढ़ता चला जाता था। यहाँ तक कि श्यामाचरण का मकान दिखायी देने लगा। कमला मैदान में टहल रहा था। उसे देखते ही प्रताप की वह दशा हो गयी जो किसी चोर की दशा सिपाही को देखकर होती है। झट एक घर की आड़ में छिप गया और रधिया से बोला—'तू जा, ये वस्तुएँ दे आ। मैं कुछ काम से बाजार जा रहा हूँ। लौटता हुआ जाऊँगा।' यह कह कर बाजार की ओर चला, परन्तु केवल दस ही डग चला होगा कि फिर महरी को बुलाया और बोला—'मुझे स्यात् देर हो जाय, इसलिए न आ सकूँगा, कुछ पूछे तो यह चिट्ठी दे देना।' यह कहकर जेब से पेन्सिल निकाली और कुछ पंक्तियाँ लिखकर दे दीं, जिससे उसके हृदय की दशा का भली-भाँति परिचय मिलता है।

'मैं आज प्रयाग जा रहा हूँ, अब वहीं पढ़ूँगा। जल्दी के कारण तुमसे नहीं मिल सका। जीवित रहूँगा तो फिर आऊँगा। कभी-कभी अपने कुशल-क्षेम की सूचना देती रहना। तुम्हारा— प्रताप'

प्रताप तो यह पत्र देकर चलता हुआ, रधिया धीरे-धीरे विरजन के घर पहुँची। वह इसे देखते ही दौड़ी और कुशल-क्षेम पूछने लगी—लाला की कोई चिट्ठी आयी थी?

रधिया—जब से गये, चिट्ठी-पत्री कुछ भी नहीं आयी।

विरजन—चची तो सुख से हैं?

रधिया—लल्लू बाबू प्रयागराज जात हैं तौन तनिक उदास रहत हैं।

विरजन—(चौंककर) लल्लू प्रयाग जा रहे हैं!

रधिया—हाँ, हम सब बहुत समुझावा कि परदेस माँ कहाँ जैहो। मुदा कोऊ की सुनत हैं?

विरजन—कब जायेंगे?

रधिया—आज दस बजे की टेम से जवय्याँ हैं। तुमसे भेंट करन आवत रहेन, तवन दुवारि पर आइ के लवट गयेन।

विरजन—यहाँ तक आकर लौट गये। द्वार पर कोई था कि नहीं?

रधिया—द्वार पर कहाँ आये, सड़क पर से चले गये।

विरजन - कुछ कहा नहीं, क्यों लौटा जाता हूँ?

रधिया—कुछ कहा नहीं, इतना बोले कि 'हमारे टेम छूटि जैहैं, तौन हम जाइत हैं'

वृजरानी ने घड़ी पर दृष्टि डाली आठ बजने वाले थे। प्रेमवती के पास जाकर बोली—माता! लल्लू आज प्रयाग जा रहे हैं, यदि आप कहें तो उनसे मिलती आऊँ। फिर न जाने कब मिलना हो, कब न हो। महरी कहती है कि वह मुझसे मिलने आते थे, पर सड़क के उसी पार से लौट गये।

प्रेमवती—अभी न बाल गुँधवाये, न माँग भरवायी, न कपड़े बदले, बस जाने को तैयार हो गयी।

विरजन—मेरी अम्माँ! आज जाने दीजिए। बाल गुँधवाने बैठूँगी तो दस यहीं बज जायेंगे।

प्रेमवती—अच्छा, तो जाओ, पर सन्ध्या तक लौट आना। गाड़ी तैयार करवा लो, मेरी ओर से सुवामा को पालागन कह देना।

विरजन ने कपड़े बदले। माधवी को बाहर दौड़ाया कि गाड़ी तैयार करने के लिए कहो और तब तक कुछ ध्यान आया। रधिया से पूछा—कुछ चिट्ठी-पत्री नहीं दी?

रधिया ने पत्र निकालकर दे दिया। विरजन ने उसे बड़े हर्ष से लिया, परन्तु उसे पढते ही उसका मुख कुम्हला गया। सोचने लगी कि वह द्वार तक आकर क्यों लौट गये? और पत्र भी लिखा तो ऐसा उखड़ा और अस्पष्ट। ऐसी कौन जल्दी थी? क्या गाडी के नौकर थे, दिन-भर में अधिक नहीं तो पाँच-छः गाड़ियाँ जाती होंगी। क्या मुझसे मिलने के लिए उन्हें दो घण्टे का विलम्ब भी असह्य हो गया? अवश्य इसमें कुछ-न-कुछ भेद है। मुझसे क्या अपराध हुआ? अचानक उसे उस समय का ध्यान आया, जब वह अति व्याकुल हो प्रताप के पास गयी थी और उसके मुख से निकला था, 'लल्लू मुझसे कैसे सहा जायगा।' विरजन को अब से पहिले कई बार ध्यान आ चुका कि मेरा उस समय उस दशा में जाना बहुत अनुचित था। तुरन्त विश्वास हो गया कि मैं अवश्य लल्लु की दृष्टि से गिर गयी। मेरा प्रेम और मन अब उनके चित्त में नहीं है। एक ठण्डी साँस लेकर बैठ गयी और माधवी से बोली—कोचवान से कह दो, अब गाड़ी न तैयार करे। मैं न जाऊँगी।

---

[१५]

कर्त्तव्य और प्रेम का संघर्ष

जब तक विरजन ससुराल न आयी थी, तब तक उसकी दृष्टि में एक हिन्दू-पतिव्रता के कर्त्तव्य और आदर्श का कोई नियम स्थिर न हुआ था। घर में कभी पति-सम्बन्धिनी चर्चा भी न होती थी। उसने स्त्री-धर्म को

पुस्तकें अवश्य पढ़ी थीं; परन्तु उनका कोई चिरस्थायी प्रभाव उसपर न हुआ था। कभी उसे यह ध्यान ही न आता था कि यह घर मेरा नहीं है और मुझे बहुत शीघ्र यहाँ से जाना पड़ेगा।

परन्तु जब वह ससुराल में आयी और अपने प्राणनाथ पति को प्रति क्षण आँखों के सामने देखने लगी तो शनै-शनै चित्त-वृत्तियों में परिवर्तन होने लगा। ज्ञात हुआ कि मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है, मेरा क्या धर्म है और क्या उसके निर्वाह की रीति है? अगली बातें स्वप्नवत् जान पड़ने लगीं। हाँ जिस समय स्मरण हो आता कि एक अपराध मुझसे ऐसा हुआ है, जिसकी कालिमा को मैं मिटा नहीं सकती, तो स्वयं लज्जा से मस्तक झुका लेती और अपने को धिक्कारती। उसे आश्चर्य होता कि मुझे लल्लू के सम्मुख जाने का साहस कैसे हुआ! कदाचित् इस घटना को वह स्वप्न समझने की चेष्टा करती, तब लल्लू का सौजन्य-पूर्ण चित्र उससे सामने आ जाता और वह हृदय से उसे आशीर्वाद देती; परन्तु आज जब प्रतापचन्द्र की क्षुद्र-हृदयता से उसे यह विचार करने का अवसर मिला कि लल्लू उस घटना को अभी भूला नहीं है और उसकी दृष्टि मे अब मेरी प्रतिष्ठा नहीं रही; यहाँ तक कि वह मेरा मुख भी नहीं देखना चाहता, तो उसे ग्लानि-पूर्ण क्रोध उत्पन्न हुआ। प्रताप की ओर से चित्त मलिन हो गया और उसकी जो प्रेम और प्रतिष्ठा उसके हृदय में थी, वह पल-भर में जल-कण की भाँति उड़ने लगी। स्त्रियों का चित्त बहुत शीघ्र प्रभावग्राही होता है। जिस प्रताप के लिए वह अपना अस्तित्व धूल में मिला देने को तत्पर थी, वही उसके एक बाल-व्यवहार को भी क्षमा नहीं कर सकता? क्या उसका हृदय ऐसा संकीर्ण है? यह विचार विरजन के हृदय में काँटे की भाँति खटकने लगा।

आज से विरजन की सजीवता लुप्त हो गयी। चित्त पर एक बोझ-सा रहने लगा। सोचती कि जब प्रताप मुझे भूल गये और मेरी रत्तीभर भी प्रतिष्ठा नहीं करते, तो इस शोक से मैं क्यों अपना प्राण घुलाऊँ? जैसे 'राम तुलसी से, वैसे तुलसी राम से।' यदि उन्हें मुझसे घृणा है; यदि

भाग समाप्त हुआ। अलीगढ ने चार सौ रन किये। अब प्रयागवालों की बारी आयी, पर खेलाड़ियों के हाथ-पाँव फूले हुए थे। विश्वास हो गया कि हम न जीत सकेंगे। अब खेल का बराबर होना कठिन है। इतने रन कौन करेगा? अकेला प्रताप क्या बना लेगा? पहिला खिलाड़ी आया और तीसरे गेंद में विदा हो गया; दूसरा खिलाड़ी आया और कठिनता से पाँच गेंद खेल सका; तीसरा आया और पहिले ही गेंद में उड़ गया; चौथे ने आकर दो-तीन हिट लगाये, पर जम न सका। पाँचवें साहब कॉलेज में एक थे, पर यहाँ उनकी भी एक न चली। थापी रखते-ही-रखते चल दिये। अब प्रतापचन्द्र दृढता से पैर उठाता, बैट घुमाता मैदान में आया। दोनों पक्षवालों ने करतल-ध्वनि की। प्रयागवालों की दशा अकथनीय थी। प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि प्रतापचन्द्र की ओर लगी हुई थी। सबके हृदय धडक रहे थे। चतुर्दिक् सन्नाटा छाया हुआ था। कुछ लोग दूर बैठकर ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि प्रताप की विजय हो। देवी-देवता स्मरण किये जा रहे थे। पहिला गेंद आया, प्रताप ने खाली दिया। प्रयागवालों का साहस घट गया। दूसरा आया, वह भी खाली गया। प्रयागवालों का कलेजा नाभि तक बैठ गया। बहुत-से लोग छतरी सँभाल घर की ओर चले। तीसरा गेंद आया। एक पड़ाके की ध्वनि हुई और गेंद लू (गर्म हवा) की भाँति गगन भेदन करता हुआ हिट पर खडे होनेवाले खिलाड़ी से सौ गज आगे गिरा। लोगों ने तालियाँ बजायीं। सूखे धान में पानी पड़ा। जानेवाले ठिठक गये। निराशों को आशा बँधी। चौथा गेंद आया और पहिले गेंद से १० गज आगे गिरा। फीएडर चौंके, हिट पर मदद पहुँचायी। पाँचवाँ गेंद आया और कट पर गया। इतने में ओवर हुआ। बॉलर बदले, नये बॉलर पूरे वधिक थे। घातक गेंद फेंकते थे। पर उनके पहिले ही गेंद को प्रताप ने आकाश में भेजकर सूर्य से स्पर्श करा दिया। फिर तो गेंद और उसकी थापी मे मैत्री-सी हो गयी। गेंद आता और थापी से पार्श्व ग्रहण करके कभी पूर्व का

मार्ग लेता, कभी पश्चिम का, कभी उत्तर का और कभी दक्षिण का। दौड़ते-दौड़ते फील्डरों की साँसे फूल गयीं। प्रयागवाले उछलते थे, तालियाँ बजाते थे। टोपियाँ वायु मे उछल रही थीं। किसी ने रुपये लुटा दिये और किसी ने अपनी सोने की जञ्जीर लुटा दी। विपक्षी मन में कुढते, झल्लाते; कभी क्षेत्र का क्रम परिवर्तन करते, कभी बॉलर परिवर्तन करते। पर सब चातुरी और क्रीड़ा-कौशल निरर्थक हो रहा था। गेंद की थापी से मित्रता दृढ हो गयी थी। पूरे दो घण्टे तक प्रताप पड़ाके, बम्ब-गोले और हवाइयाँ छोड़ता रहा और फील्डर गेंद की ओर इस प्रकार लपकते जैसे बच्चे चन्द्रमा की ओर लपकते हैं। रनों की संख्या तीन सौ तक पहुँच गयी। विपक्षियों के छक्के छूटे। हृदय ऐसा थर्रा गया कि एक गेंद भी सीधा न आता था। यहाँ तक कि प्रताप ने पचास रन और किये, और अब उसने अम्पायर से तनिक विश्राम करने के लिए अवकाश माँगा। उसे आता देखकर सहस्रों मनुष्य उसी ओर दौड़े और उसे बारी-बारी से गोद में उठाने लगे। चारों ओर भगदड़ मच गयी। सैकड़ों छाते, छड़ियाँ, टोपियाँ और जूते ऊर्ध्वगामी हो गये, मानो वे भी उमङ्ग में उछल रहे थे। ठीक उसी समय तारघर का चपरासी बाइसिकल पर आता हुआ दिखायी दिया। निकट आकर बोला—'प्रतापचन्द्र किसका नाम है?' प्रताप ने चौंककर उसकी ओर देखा और चपरासी ने तार का लिफाफा उसके हाथ में रख दिया। उसे पढ़ते ही प्रताप का वदन पीला हो गया। दीर्घ श्वास लेकर कुर्सी पर बैठ गया और बोला—"यारो! अब मैच का निबटारा तुम्हारे हाथ में है। मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन कर दिया, इसी डाक से घर चला जाऊँगा।"

यह कहकर वह बोर्डिङ्ग-हाउस की ओर चला। सैकड़ों मनुष्य पूछने लगे—"क्या है? क्या?" लोगों के मुख पर उदासी छा गयी, पर उसे बात करने का कहाँ अवकाश! उसी समय ताँगे पर चढ़ा और स्टेशन की ओर चला। रास्ते-भर उसके मन में तर्क-वितर्क होते रहे। बार-बार अपने को

अपने को सुखाकर इस दशा तक पहुँचाया था—रो रोकर उससे कह रही थी—लल्लू ! चुप रहो, ईश्वर जानता है, मैं भली-भाँति अच्छी हूँ। मानो अच्छा न होना उसका अपराध था। स्त्रियों की सवेदनशीलता कैसी कोमल होती है ! प्रतापचन्द्र के एक साधारण सकोच ने विरजन को इस जीवन से उपेक्षित बना दिया था। आज आँसू की कुछ बूँदों ने उसके हृदय के उस सन्ताप उस जलन और उस अग्नि को शान्त कर दिया, जो कई महीनों से उसके रुधिर और हृदय को जला रही थी। जिस रोग को बड़े बड़े वैद्य और डॉक्टर अपनी औषध तथा उपाय से अच्छा न कर सके थे, उसे अश्रुबिन्दुओं ने क्षण भर में चङ्गा कर दिया। क्या यह पानी के बिन्दु अमृत के बिन्दु थे ?

प्रताप ने धीरज धरकर पूछा—विरजन ! तुमने अपनी क्या गति बना रखी है ?

विरजन (हँसकर)—यह गति मैंने नहीं बनायी, तुमने बनायी है।

प्रताप—माताजी का तार न पहुँचता तो मुझे सूचना भी न होती।

विरजन—आवश्यकता ही क्या थी ? जिसे भुलाने के लिए तुम प्रयाग चले गये, उसके मरने जीने की तुम्हें क्या चिन्ता ?

प्रताप—बातें बना रही हो। पराये को क्यों पत्र लिखतीं ?

विरजन—किसे आशा थी कि तुम इतनी दूर से आने का या पत्र लिखने का कष्ट उठाओगे ? जो द्वार से आकर फिर जाय और मुख देखने से घृणा करे उसे पत्र भेजकर क्या करती ?

प्रताप—उस समय लौट जाने का जितना दु:ख मुझे हुआ मेरा चित्त ही जानता है। तुमने उस समय तक मेरे पास कोइ पत्र न भेजा था। मैंने समझा, अब सुध भूल गयीं।

विरजन—यदि मै तुम्हारी बातों को सच न समझती होती तो कह देती कि ये सब सोची हुइ बातें हैं।

प्रताप—भला जो समझो, अब यह बताओ कि कैसा जी है ? मैंने

तुम्हें पहिचाना नहीं, ऐसा मुख फीका पड़ गया है।

विरजन—अब अच्छी हो जाऊँगी, औषधि मिल गयी।

प्रताप संकेत समझ गया। हा शोक! मेरी तनिक-सी चूक ने यह प्रलय कर दिया। देर तक उसे समझाता रहा और प्रातःकाल जब वह अपने घर चला तो विरजन का वदन विकसित था, उसे विश्वास हो गया कि लल्लू मुझे भूले नहीं है और मेरी सुध और प्रतिष्ठा उनके हृदय में विद्यमान है। प्रताप ने उसके मन से वह काँटा निकाल दिया, जो कई मास से खटक रहा था और जिसने उसकी यह गति कर रक्खी थी। एक ही सप्ताह मे उसका मुखड़ा स्वर्ण हो गया, मानो कभी बीमार ही न थी।

---

[१६]

स्नेह पर कर्त्तव्य की विजय

रोगी जब तक बीमार रहता है उसे सुध नहीं रहती कि कौन मेरी औषधि करता है, कौन मुझे देखने के लिए आता है। वह अपने ही कष्ट में इतना ग्रस्त रहता है कि किसी दूसरे की बात का ध्यान ही उसके हृदय मे उत्पन्न नहीं होता; पर जब वह आरोग्य हो जाता है, तब उसे अपनी सुश्रुषा करनेवालों का ध्यान और उनके उद्योग तथा परिश्रम का अनुमान होने लगता है और उसके हृदय में उनका प्रेम तथा आदर बढ़ जाता है। ठीक यही दशा वृजरानी की थी। जब तक वह स्वयं अपने कष्ट में मग्न थी, कमलाचरण की व्याकुलता और कष्टों का अनुभव न कर सकती थी। निस्सन्देह वह उसकी खातिरदारी में कोई अंश शेष न रखती थी; परन्तु यह व्यवहार-पालन के विचार से होती थी न कि सच्चे प्रेम से। परन्तु जब उसके हृदय से वह व्यथा मिट गयी तो उसे कमला का परिश्रम और उद्योग स्मरण हुआ और यह चिन्ता हुई कि इस अपार उपकार का प्रति-उत्तर क्या दूँ? मेरा धर्म था कि सेवा-सत्कार से उन्हें सुख देती,

पर सुख देना कैसा, उलटे उनके प्राण ही की गाहक हुई हूँ। वे तो ऐसे सच्चे दिल से मेरा प्रेम करें और मैं अपना कर्त्तव्य भी न पालन कर सकूँ। ईश्वर को क्या मुँह दिखाऊँगी? सच्चे प्रेम का कमल बहुधा कृपा के प्रभाव से खिल जाया करता है। जहा रूप, यौवन, सम्पत्ति और प्रभुता तथा स्वाभाविक सौजन्य प्रेम का बीज बोने में अकृतकार्य रहते हैं, वहाँ प्रायः उपकार का जादू चल जाता है। कोई हृदय ऐसा वज्र और कठोर नहीं हो सकता, जो सत्य सेवा से द्रवीभूत न हो जाय।

कमला और वृजरानी में दिन-दिन प्रीति बढने लगी। एक प्रेम का दास था, दूसरी कर्त्तव्य की दासी। सम्भव न था कि वृजरानी के मुख से कोई बात निकले और कमलाचरण उसको पूरा न करे। अब उसकी तत्परता और योग्यता उन्हीं प्रयत्नों में व्यय होती थी। पढना केवल माता-पिता को धोखा देना था। वह सदा रुख देखा करता और इस आशा पर कि यह काम उसकी प्रसन्नता का कारण होगा, सब कुछ करने पर कटिबद्ध रहता। एक दिन उसने माधवी को फुलवाड़ी से फूल चुनते देखा। यह छोटा-सा उद्यान घर के पीछे था। पर कुटुम्ब के किसी व्यक्ति को उससे प्रेम न था, अतएव बारहों मास उस पर उदासी छायी रहती थी। वृजरानी को फूलों से हार्दिक प्रेम था। फुलवाड़ी की यह दुर्गति देखी तो माधवी को कहा कि कभी-कभी इसमें पानी दे दिया कर। धीरे-धीरे वाटिका की दशा कुछ सुधर चली और पौधों में फूल लगने लगे। कमलाचरण के लिए इतना इशारा बहुत था। तन-मन से वाटिका को सुसज्जित करने पर उतारू हो गया। दो चतुर माली नौकर रख लिये। विविध प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पुष्प और पौधे लगाये जाने लगे। भाँति-भाँति की घासें और पत्तियाँ गमलों मे सजायी जाने लगीं, क्यारियाँ और रविशें ठीक की जाने लगीं। ठौर-ठौर पर लताएँ चढायी गयीं। कमलाचरण सारे दिन हाथ मे पुस्तक लिये फुलवाड़ी मे टहलता रहता था और मालियों को वाटिका की सजावट और बनावट की ताकीद किया करता था, केवल

इसीलिए कि विरजन प्रसन्न होगी। ऐसे स्नेह-भक्त का जादू किस पर न चल जायगा ? एक दिन कमला ने कहा—'आओ, तुम्हें वाटिका की सैर कराऊँ।' वृजरानी उसके साथ चली।

चाँद निकल आया था। उसके उज्ज्वल प्रकाश में पुष्प और पत्ते परम शोभायमान थे। मन्द मन्द वायु चल रहा था। मोतिये और वेले की सुगन्धि मस्तिष्क को सुरभित कर रही थी। ऐसे समय मे विरजन एक रेशमी साड़ी और एक सुन्दर स्लीपर पहिने रविशों मे टहलती दीख पड़ी। उसके वदन का विकास फूलों को लज्जित करता था, जान पड़ता था कि फूलों की देवी है। कमलाचरण बोले—आज परिश्रम सफल हो गया।

जैसे कुमकुमे में गुलाल भरा होता है, उसी प्रकार वृजरानी के नयनों में प्रेम रस भरा हुआ था। वह मुसकरायी, परन्तु कुछ न बोली।

कमला—मुझ जैसा भाग्यवान् मनुष्य संसार मे न होगा।

विरजन—क्या मुझसे भी अधिक ?

कमला मतवाला हो रहा था। विरजन को प्यार से गले लगा लिया।

कुछ दिनों तक प्रति दिन का यही नियम रहा। इसी बीच में मनोरंजन की नयी सामग्री उपस्थित हो गयी। राधाचरण ने चित्रों का एक सुन्दर अलबम विरजन के पास भेजा। इसमें कई चित्र चन्द्रा के भी थे। कहीं वह बैठी श्यामा को पढ़ा रही है, कहीं बैठी पत्र लिख रही है। उसका एक चित्र पुरुष-वेष में भी था। राधाचरण फोटोग्राफी की कला में कुशल थे। विरजन को यह अलबम बहुत भाया। फिर क्या था ? कमला को धुन लगी कि मैं भी चित्र खींचने का अभ्यास करूँ और विरजन का चित्र खीचूँ। भाई के पास पत्र लिख भेजा कि केमरा और अन्य आवश्यक सामान मेरे पास भेज दीजिये और और अभ्यास आरम्भ कर दिया। घर से चलते कि स्कूल जा रहा हूँ पर बीच ही में एक पारसी फोटोग्राफर की दूकान पर आ बैठते। तीन-चार मास के परिश्रम और उद्योग से इस कला में प्रवीण हो गये। पर अभी घर में किसी को यह बात मालूम न थी। कई बार विर-

जन ने पूछा भी कि आजकल दिन भर कहाँ रहते हो ? छुट्टी के दिन भी नहीं दीख पड़ते। पर कमलाचरण ने हूँ-हाँ करके टाल दिया।

एक दिन कमलाचरण कहीं बाहर गये हुए थे। विरजन के जी में आया कि लाओ प्रतापचन्द्र को एक पत्र लिख डालूँ, पर बक्स खोला तो चिट्ठी का कागज न था। माधवी से कहा कि जाकर अपने भैया के डेस्क में से कागज निकाल ला। माधवी दौड़ी हुई गयी तो उसे डेस्क पर चित्रों का अलबम खुला हुआ मिला। उसने अलबम उठा लिया और भीतर लाकर विरजन से कहा—बहिन! देखो, यह चित्र मिला।

विरजन ने उसे चाव से हाथ में ले लिया और पहिला ही पन्ना उलटा था कि अचम्भा-सा हो गयी। वह उसी का चित्र था। वह अपने पलँग पर चादर ओढे निद्रा में पड़ी हुई थी, बाल ललाट पर बिखरे हुए थे, अधरों पर एक मोहनी मुसकान की झलक थी, मानो कोई मन-भावन स्वप्न देख रही है। चित्र के नीचे लिखा हुआ था—'प्रेम-स्वप्न'। विरजन चकित थी, मेरा ऐसा चित्र उन्होंने कैसे खिचवाया और किससे खिचवाया ! क्या किसी फोटोग्राफर को भीतर लाये होंगे ? नहीं, ऐसा क्या वे करेंगे ! क्या आश्चर्य है, स्वयं ही खींच लिया हो। इधर महीनों से बहुत परिश्रम भी तो करते हैं। यदि स्वयं ऐसा चित्र खींचा है तो वस्तुत प्रशसनीय कार्य किया है। दूसरा पन्ना उलटा तो उसमें भी अपना ही चित्र पाया। वह एक साड़ी पहिने, आधे सिर तक आँचल डाले वाटिका मे भ्रमण कर रही थी। इस चित्र के नीचे लिखा हुआ था—'वाटिका-भ्रमण'। तीसरा पन्ना उलटा तो वह भी अपना ही चित्र था। वह वाटिका में पृथ्वी पर बैठी हार गूँथ रही थी। यह चित्र तीनों में सबसे सुन्दर था, क्योंकि चित्रकार ने इसमें बड़ी कुशलता से प्राकृतिक रङ्ग भरे थे। इस चित्र के नीचे लिखा हुआ था—'अलबेली मालिन।' अब विरजन को ध्यान आया कि एक दिन जब मैं हार गूँथ रही थी तो कमलाचरण नील के काँटे की झाड़ी से मुसकुराते हुए निकले थे। अवश्य उसी

दिन यह चित्र खींचा होगा। चौथा पन्ना उलटा तो एक परम मनोहर और सुहावना दृश्य दिखायी दिया। निर्मल जल से लहराता हुआ एक सरोवर था और उसके दोनो तीरों पर, जहाँ तक दृष्टि पहुँचती थी, गुलाबों की छटा दिखायी देती थी। उनके कोमल पुष्प वायु के झोकों से लचके जाते थे। ऐसा ज्ञात होता था, मानो प्रकृति ने हरे आकाश मे लाल तारे टाँक दिये है। किसी अंग्रेजी चित्र का अनुकरण प्रतीत होता था। अल-बम के और पन्ने अभी कोरे थे।

विरजन ने अपने चित्रों को फिर देखा और उस साभिमान आनन्द से, जो प्रत्येक रमणी को अपनी सुन्दरता पर होता है, अलबम को छिपाकर रख दिया। सन्ध्या को कमलाचरण ने आकर देखा, तो अल-बम का पता नहीं। हाथों के तोते उड़ गये। चित्र उसके कई मास के कठिन परिश्रम के फल थे और उसे आशा थी कि यही अलबम उपहार देकर विरजन के हृदय में और भी घर कर लूँगा। बहुत व्याकुल हुआ। भीतर जाकर विरजन से पूछा तो उसने साफ इन्कार किया। बेचारा घबराया हुआ अपने मित्रों के घर गया कि कोई उनमे से उठा ले गया हो। पर वहाँ भी फबतियों के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा। निदान जब महाशय पूरे निराश हो गये तो शाम को विरजन ने अलबम का पता बतलाया। इसी प्रकार दिवस सानन्द व्यतीत हो रहे थे। दोनों यही चाहते थे कि प्रेम-क्षेत्र में मैं आगे निकल जाऊँ। पर दोनों के प्रेम मे अन्तर था। कमलाचरण प्रेमोन्माद मे अपने को भूल गया। पर इसके विरुद्ध विरजन का प्रेम कर्त्तव्य की नींव पर स्थित था। हाँ, यह आनन्द-मय कर्त्तव्य था।

तीन वर्ष और व्यतीत हो गये। यह उनके जीवन के तीन शुभ वर्ष थे। चौथे वर्ष का आरम्भ आपत्तियों का आरम्भ था। कितने ही प्राणियों को संसार की सुख-सामग्रियाँ इस परिमाण से मिलती है कि उनके लिए दिन सदा होली और रात्रि सदा दिवाली रहती है। पर कितने ही ऐसे

हतभाग्य जीव हैं, जिनके आनन्द के दिन एक बार बिजली की भाँति चमककर सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं। वृजरानी उन्हीं अभागों में थी। वसन्त की ऋतु थी। सीरी-सीरी वायु चल रही थी। सरदी ऐसे कड़ाके की पड़ती थी कि कुओं का पानी जम जाता था। उस समय नगरों में प्लेग का प्रकोप हुआ। सहस्रों मनुष्य उसकी भेंट होने लगे। एक दिन बहुत कड़ा ज्वर आया, एक गिल्टी निकली और बीमार चल बसा। गिल्टी का निकलना मानो मृत्यु का सदेशा था। क्या वैद्य, क्या डाक्टर, किसी की कुछ न चलती थी। सैकड़ों घरों के दीपक बुझ गये। सहस्रों बालक अनाथ और सहस्रों स्त्रियाँ विधवा हो गयीं। जिसको जिधर गली मिली, भाग निकला। प्रत्येक मनुष्य को अपनी-अपनी पड़ी हुई थी। कोई किसी का सहायक और हितैषी न था। माता-पिता बच्चों को छोड़कर भागे। स्त्रियों ने पुरुषों से सम्बन्ध परित्याग किया। गलियों मे, सड़कों पर, घरों में जिधर देखिए मृतकों के ढेर लगे हुए थे। दुकानें बन्द हो गयीं। द्वारों पर ताले बन्द हो गये। चतुर्दिक धूल उड़ती थी। कठिनता से कोई जीवधारी चलता फिरता दिखायी देता था और यदि कोई कार्यवश घर से निकल पड़ता तो ऐसी शीघ्रता से पाँव उठाता, मानो मृत्यु का दूत उसका पीछा करता आ रहा है। सारी बस्ती उजाड़ हो गयी। यदि आबाद थे तो कब्रिस्तान या श्मशान। चारों ओर डाकुओं की बन आयी। दिन-दोपहर ताले टूटते थे और सूर्य के प्रकाश में सेंधें पड़ती थीं। उस दारुण दुःख का वर्णन नहीं हो सकता।

बाबू श्यामाचरण परम दृढ़चित्त मनुष्य थे। गृह के चारो ओर महल्ले-के महल्ले शून्य हो गये थे, पर वे अभी तक अपने घर मे निर्भय जमे हुए थे, लेकिन जब उनका साईस मर गया तो सारे घर में खलबली मच गयी। गाँव मे जाने की तैयारियाँ होने लगीं। मुंशीजी ने उस जिले के कुछ गाँव मोल ले लिए थे और मझगाँव नामी ग्राम मे एक अच्छा-सा घर भी बनवा रखा था। उनकी इच्छा थी कि पेंशन पाने पर यहीं रहूँगा,

काशी छोड़कर आगरे में कौन मरने जाय ! विरजन ने यह विचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुई। ग्राम्य-जीवन के मनोहर दृश्य उसके नेत्रों में फिर रहे थे। हरे-भरे वृक्ष और लहलहाते हुए खेत, हरिणों की क्रीड़ा और पक्षियों का कलरव। यह छटा देखने के लिए उसका चित्त लालायित हो रहा था। कमलाचरण भी शिकार खेलने के लिए अस्त्र-शस्त्र ठीक करने लगे। पर अचानक मुंशीजी ने उसे बुलाकर कहा कि तुम प्रयाग जाने के लिए तैयार हो जाओ। प्रतापचन्द्र वहाँ तुम्हारी सहायता करेगा। गाँवों में व्यर्थ समय बिताने से क्या लाभ ? इतना सुनना था कि कमलाचरण की नानी मर गयी। प्रयाग जाने से इन्कार कर दिया। बहुत देर तक मुंशीजी उसे समझाते रहे, पर वह जाने के लिए राजी न हुआ। निदान उनके इस अन्तिम शब्दों ने यह निपटारा कर दिया—तुम्हारे भाग्य में विद्या लिखी नहीं है। मेरी मूर्खता है कि उससे लड़ता हूँ।

वृजरानी ने जब यह बात सुनी तो उसे बहुत दुःख हुआ। वृजरानी यद्यपि समझती थी कि कमला का ध्यान पढ़ने में नहीं लगता; पर जब तब यह अरुचि उसे बुरी न लगती थी बल्कि कभी कभी उसका जी चाहता कि आज कमला स्कूल न जाते तो अच्छा था। उनकी प्रेममय वाणी उसके कानों को बहुत प्यारी मालूम होती थी। पर जब उसे यह ज्ञात हुआ कि कमला ने प्रयाग जाना अस्वीकार किया और लालाजी बहुत समझा रहे हैं, तो उसे और भी दुःख हुआ। क्योंकि उसे कुछ दिनों अकेले रहना सह्य था, पर कमला पिता का आज्ञोल्लंघन करे, यह सह्य न था। माधवी को भेजा कि अपने भैया को बुला ला। पर कमला ने जगह से हिलने की शपथ खा ली थी। सोचता कि भीतर जाऊँगा, तो वह अवश्य प्रयाग जाने के लिए कहेगी। वह क्या जाने कि यहाँ हृदय पर क्या बीत रही है। बातें तो ऐसी मीठी-मीठी करती है, पर जब कभी प्रेम-परीक्षा का समय आ जाता है, तो कर्त्तव्य और नीति की ओट में मुख छिपाने लगती है। सत्य है कि स्त्रियों में प्रेम की गन्ध ही नहीं होती।

जब बहुत देर हो गयी और कमला कमरे से निकला तब वृजरानी स्वयं आयी और बोली—क्या आज घर में आने की शपथ खा ली है? राह देखते देखते आँखें पथरा गयीं।

कमला—भीतर जाते भय लगता है।

विरजन—अच्छा, चलो, मैं संग-संग चलती हुँ, अब तो नहीं डरोगे?

कमला—मुझे प्रयाग जाने की आज्ञा मिली है।

विरजन—मै भी तुम्हारे संग चलूँगी।

यह कहकर विरजन ने कमलाचरण की ओर आँखें उठायीं। उनमे अगूर के दाने लगे हुए थे। कमला हार गया। इन मोहिनी आँखो मे आँसू देखकर किसका हृदय था, का अपने हठ पर दृढ़ रहता? कमला ने उसे कण्ठ से लगा लिया और कहा—मै जानता था कि तुम जीत जाओगी। इसी लिए भीतर न जाता था। रात-भर प्रेम-वियोग की बातें होती रहीं। बार-बार आँखे परस्पर मिलतीं, मानो वे फिर कभी न मिलेंगे। शोक! किसे मालूम था कि यह अन्तिम भेंट है। विरजन को फिर कमला से मिलना नसीब न हुआ।

———

[१७]

कमला के नाम विरजन के पत्र

(१)

'प्रियतम,

मझगाँव

प्रेम पत्र आया। सिर पर चढ़ाकर नेत्रों से लगाया। ऐसे पत्र तुम न लिखा करो। हृदय विदीर्ण हो जाता है। मै लिखूँ तो असगत नहीं। यहाँ चित्त अति व्याकुल हो रहा है। क्या सुनती थी और क्या देखती हूँ? टूटे फूटे फूस के झोपड़े मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े-करकट के

बड़े बड़े ढेर, कीचड़ मे लिपटी हुई भैंसे, दुर्बल गायें, ये सब दृश्य देखकर जी चाहता है कि कहीं चली जाऊँ। मनुष्यों को देखो तो उनकी शोच-नीय दशा है। हड्डिया निकली हुई हैं। वे विपत्ति की मूर्तियाँ और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक वेफटा वस्त्र नहीं है और कैसे भाग्यहीन की रात दिन पसीना बहाने पर भी कभी भरपेट रोटियाँ नहीं मिलती। हमारे घर के पिछवाड़े एक गड्ढा है, माधवी खेलती थी। पाँव फिसला तो पानी मे गिर पड़ी। यहाँ किम्वदन्ती है कि गड्ढे मे चुड़ैलें नहाने आया करती हैं और वे अकारण राह चलनेवालों से छेड़-छाड़ किया करती हैं। इसी प्रकार द्वार पर एक पीपल का पेड़ है। वह भूतों का आवास है। गड्ढे का तो बहुत भय नहीं है, परन्तु इस पीपल का त्रास सारे गाँव के हृदय पर ऐसा छाया हुआ है कि सूर्यास्त ही से मार्ग बन्द हो जाता है बालक और स्त्रियाँ तो उधर पैर ही नहीं रखते। हाँ, अकेले-दुकेले पुरुष कभी-कभी चले जाते है, पर वे भी घबराये हुए। ये दो स्थान मानो उन निकृष्ट जीवों के केन्द्र है। इनके अतिरिक्त सैकड़ो भूत-चूड़ैल भिन्न-भिन्न स्थानों के निवासी पाये जाते है। इन लोगों को चुड़ैलें दीख पड़ती हैं। लोगों ने इनके स्वभाव पहचान लिये है। किसी भूत के विषय मे कहा जाता है कि वह सिर पर चढ़ता है तो महीनों नहीं उतरता और कोई दो-एक दिन में पूजा लेकर अलग हो जाता है। गाँव-वालों में इन विषयों पर इस प्रकार वार्त्तालाप होता है, मानो ये प्रत्यक्ष घटनाएँ हैं। यहाँ तक सुना गया है कि चुड़ैले भोजन-पानी माँगने भी आया करती हैं। उनकी साड़ियाँ प्रायः बगुले के पख की भाँति उज्ज्वल होती हैं और वे बातें कुछ-कुछ नाक में करती हैं। हाँ, गहनों का प्रचार उनकी जाति मे कम है। उन्हीं स्त्रियों पर उनके आक्रमण का भय रहता है, जो बनाव शृगार किये, रगीन वस्त्र पहिने, अकेली उनकी दृष्टि मे पड़ जायें। फूलों की बास उनको बहुत भाती है। सम्भव नहीं कि कोई स्त्री या बालक रात को अपने पास फूल रखकर सोवे।

भूतों के मान और प्रतिष्ठा का अनुमान बड़ी चतुराई से किया गया है। जोगी बाबा आधी रात को काली कमरिया ओढे, खड़ाऊँ पर सवार, गाँव के चारों ओर भ्रमण करते हैं और भूले-भटके पथिकों को मार्ग बताते हैं। साल में एक बार उनकी पूजा होती है। अब भूतों में नहीं वरन् देवताओं में गिने जाते हैं। वह किसी भी आपत्ति को यथाशक्ति गाँव के भीतर पग नहीं रखने देते। इनके विरुद्ध धोबी बाबा से गाँव-भर थर्राता है। जिस वृक्ष पर उनका वास है, उधर से यदि कोई दीपक जलाने के पश्चात् निकल जाय, तो उसके प्राणों की कुशलता नहीं। उन्हें भगाने के लिए दो बोतल मदिरा काफी है। उनका पुजारी मंगल के दिन उस वृक्ष के तले गाँजा और चरस रख आता है। एक लाला साहब भी भूत बन बैठे हैं। यह महाशय पटवारी थे। उन्हें कई पंडित असामियों ने मार डाला था। उनकी पकड़ ऐसी गहरी है कि प्राण लिये बिना नहीं छोड़ती। कोई पटवारी यहाँ एक वर्ष से अधिक नहीं जीता। गाँव से थोड़ी दूर पर एक पेड़ है। उस पर मौलवी साहब निवास करते हैं। वह बेचारे किसी को नहीं छोड़ते। हाँ, बृहस्पति के दिन पूजा न पहुँचायी जाय, तो बच्चों को छेड़ते हैं।

कैसी मूर्खता है! कैसी मिथ्या शक्ति है! ये भावनाएँ इनके हृदय पर वज्रलीक हो गयी हैं। बालक बीमार हुआ कि भूत की पूजा होने लगी। खेत-खलिहान में भूत का भाग, ब्याह आदि में भूत का भाग, जहाँ देखिये, भूत ही-भूत दीखते हैं। यहाँ न देवी हैं, न देवता। भूतों ही का साम्राज्य है। यमराज यहाँ चरण नहीं रखते, भूत ही जीव-हरण करते हैं। इन भावों का किस प्रकार सुधार हो? किमधिकम्।

तुम्हारी,

विरजन'

(२)

'प्यारे , मझगाँव

बहुत दिनों के पश्चात् आपकी प्रेम-पत्री प्राप्त हुई। क्या सचमुच पत्र लिखने का अवकाश नहीं? पत्र क्या लिखा है, मानो बेगार टाली है। तुम्हारी तो यह आदत न थी। क्या वहाँ जाकर कुछ और हो गये? तुम्हें यहाँ से गये दो मास से भी अधिक होते है। इस बीच मे कई छोटी बड़ी छुट्टियाँ पड़ीं, पर तुम न आये। तुमसे कर बाँधकर कहती हूँ—होली की छुट्टी में अवश्य आना। यदि अबकी बार तरसायी तो मुझे सदा उलाहना रहेगा।

यहाँ आकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो किसी दूसरे ससार मे आ गयी हूँ। रात को शयन कर रही थी कि अचानक हा-हा, हू हू का कोलाहल सुनायी दिया। चौंक कर उठ बैठी। पूछा तो ज्ञात हुआ कि लड़के घर घर से उपले और लकड़ी जमा कर रहे थे। होली माता का यही आहार है। यह बेढंगा उपद्रव जहाँ पहुँच गया, ईंधन का दिवाला हो गया। किसी की शक्ति नहीं जो इस सेना को रोक सके। एक नम्बरदार की मड़िया लोप हो गयी। उसम दस बारह बैल सुगमतापूर्वक बाँधे जा सकते थे। होली वाले कई दिन से घात में थे। अवसर पाकर उड़ा ले गये। एक कुरमी का झोपड़ा उड़ गया। कितने उपले बेपता हो गये। लोग अपनी लकड़ियाँ घरों में भर लेते है। लालाजी ने एक पेड़ ईंधन के लिए मोल लिया था। आज रात को वह भी होली माता के पेट में चला गया। दो-तीन घरों के किवाड़ उतर गये। पटवारी साहब द्वार पर सो रहे थे। उन्हें भूमि पर ढकेलकर लोग चारपाई ले भागे। चतुर्दिक् ईंधन की लूट मची हुई है। जो वस्तु एक बार होली माता के मुख में चली गयी, उसे फिर लाना बड़ा भारी पाप है। पटवारी साहब ने बड़ी धमकियाँ दीं मैं जमाबन्दी बिगाड़ दूँगा, खसरा झूठ कर दूँगा, पर कुछ प्रभाव न हुआ। यहाँ की प्रथा ही है कि इन दिनों होलीवाले जो वस्तु

पा जाँय, निर्विघ्न उठा ले जाँय। कौन किसकी पुकार करे? नवयुवक पुत्र अपनी पिता की आँख बचाकर अपनी ही वस्तु उठवा देता है। यदि वह ऐसा न करे, तो अपने समाज में अपमानित समझा जाय।

खेत पक गये हैं, पर काटने में दो सप्ताह का विलम्ब है। मेरे द्वार पर से मीलों का दृश्य दिखाई देता है। गेहूँ और जौ के सुथरे खेतों के किनारे किनारे कुसुम के अरुण और केशर वर्ण पुष्पों की पक्ति परम सुहावनी लगती है। तोते चतुर्दिक् मँडलाया करते हैं।

माधवी ने यहाँ कई सखियाँ बना रक्खी हैं। पड़ोस में एक अहीर रहता है? राधा नाम है। गत वर्ष माता पिता प्लेग के ग्रास हो गये थे। गृहस्थी का कुल भार उसी के सिर पर है। उसकी स्त्री तुलसा प्रायः हमारे यहाँ आती है। नख से सिख तक सुन्दरता भरी हुई है। इतनी भोली है कि जी चाहता है घण्टों उसकी बातें सुना करूँ। माधवी ने इससे बहिनापा कर रखा है। कल उसकी गुड़ियों का विवाह है। तुलसी की गुड़िया है और माधवी का गुड्डा। सुनती हूँ, बेचारी बहुत निर्धन है। पर मैंने उसके मुख पर कभी उदासी नहीं देखी। कहती थी कि उपले बेचकर दो रुपये जमा कर लिये हैं। एक रुपया दायज दूँगी और एक रुपये में बरातियों का खाना-पीना होगा। गुड़ियों के वस्त्राभूषण का भार राधा के सिर है। कैसा सरल सतोषमय जीवन है!

लो, अब बिदा होती हूँ। तुम्हारा समय निरर्थक बातों मे नष्ट हुआ। क्षमा करना। तुम्हें पत्र लिखने बैठती हूँ, तो लेखनी ही नहीं रुकती। अभी बहुतेरी बातें लिखने को पड़ी हैं। प्रतापचन्द्र से मेरी पालागन कह देना।

तुम्हारी,
विरजन'

(३)

मझगाँव

'प्यारे,

तुम्हारी प्रेम-पत्रिका मिली। छाती से लगायी। वाह! चोरी और मुँहजोरी। अपने न आने का दोष मेरे सिर धरते हो? मेरे मन से कोई

पूछे कि तुम्हारे दर्शन की उसे कितनी अभिलाषा ? अब यह अभिलाषा प्रति दिन व्याकुलता के रूप में परिणित होती जाती है। कभी-कभी बेसुध हो जाती हूँ। मेरी यह दशा थोड़े ही दिनों से होने लगी है। जिस समय यहाँ से गये हो, मुझे ज्ञात न था कि वहाँ जाकर मेरी दलेल करोगे। खैर, तुम्हीं सच और मैं ही झूठ। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुमने मेरे दोनों पत्र पसन्द किये। पर प्रतापचन्द्र को व्यर्थ दिखाये। वे पत्र बड़ी असावधानी से लिखे गये हैं। सम्भव है कि अशुद्धियाँ रह गयी हों। मुझे विश्वास नहीं आता कि प्रताप ने उन्हें मूल्यवान समझा हो। यदि वे मेरे पत्रों का इतना आदर करते हैं कि उनके सहारे से हमारे ग्राम्य-जीवन पर कोई रोचक निबंध लिख सकें, तो मैं अपने को परम् भाग्यवान् समझती हूँ।

कल यहाँ देवीजी की पूजा थी। हल, चक्की, पुर, चूल्हे सब बन्द थे। देवीजी की ऐसी ही आज्ञा है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन कौन करे? हुक्का-पानी बन्द हो जाय। साल भर में यही एक दिन है, जिसे गाँववाले भी छुट्टी का समझते है। अन्यथा होली-दीवाली भी प्रति दिन के आवश्यक कामों को नहीं रोक सकती। बकरा चढ़ा। हवन हुआ। सत्तू खिलाया गया। अब गाँव के बच्चे-बच्चे को पूर्ण विश्वास है कि प्लेग का आगमन यहाँ न हो सकेगा। ये सब कौतुक देखकर सोयी थी। लगभग बारह बजे होंगे कि सैकड़ो मनुष्य हाथ मे मशालें लिये कोलाहल मचाते निकले और सारे गाँव का फेरा किया। इसका यह अर्थ था कि इस सीमा के भीतर बीमारी पैर न रख सकेगी। फेरे के समाप्त होने पर कई मनुष्य अन्य ग्राम की सीमा में घुस गये और थोड़े से फूल, पान, चावल, लौंग आदि पदार्थ पृथ्वी पर रख आये। अर्थात् अपने ग्राम की बला दूसरे गाँव के सिर डाल आये। जब ये लोग अपना कार्य समाप्त करके वहाँ से चलने लगे तो उस गाँव वालों को सुनगुन मिल गयी। सैकड़ों मनुष्य लाठियाँ लेकर चढ़ दौड़े। दोनों पक्षवालों मे खूब मार-पीट हुई। इस समय गाँव के कईमनुष्य हल्दी पी रहे है।

आज प्रातःकाल कल की वची-वचायो रस्में पूरी हुई, जिनको यहा कढाई देना कहते हैं। मेरे द्वार पर एक भट्ठा खोदा गया और उस पर एक कड़ाह दूध से भरा हुआ रखा गया। काशी नाम का एक भर है। वह शरीर में भभूत रमाये आया। गॉव के आदमी टाट पर बैठे। शख वजाने लगा। कड़ाह के चतुर्दिक् माला-फूल बिखेर दिये गये। जब कड़ाह में खूब उबाल आया तो काशी झट उठा और जय कालीजी की कहकर कड़ाह मे कूद पड़ा। मैं तो समझी, अब यह जीवित न निकलेगा। पर पॉच मिनट पश्चात् काशी ने फिर छलॉग मारी और कड़ाह के बाहर था। उसका बाल भी बॉका न हुआ। लोगों ने उसे माला पहनायी। वे कर बॉधकर पूछने लगे—'महाराज! अबके वर्ष खेती की उपज कैसी होगी? पानी कैसा बरसेगा? बीमारी आयेगी या नहीं? गॉव के लोग कुशल से रहेंगे? गुड़ का भाव कैसा रहेगा?' आदि। काशी ने इन सब प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट कर किंचित् रहस्यपूर्ण शब्दों मे दिये। इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई। सुनती हूँ, ऐसी क्रिया प्रति वर्ष होती है। काशी की भविष्यवाणियॉ सब सत्य सिद्ध होती है और कभी एकाध असत्य भी निकल जाय तो काशी उनका समाधान भी बड़ी योग्यता से कर देता है। काशी बड़ी पहुँच का आदमी है। गॉव मे कहीं चोरी हो, काशी उसका पता लगा देगा। जो कार्य पुलिस के भेदियों से पूरा न हो, उसे वह पूरा कर देता है। यद्यपि वह जाति का भर है, तथापि गॉव में उसका बड़ा आदर है। इन सब भक्तिया का पुरस्कार वह मदिरा के अतिरिक्त और कुछ नहीं लेता। नाम निकलवाइये, पर एक बोतल उसकी भेंट कीजिये। आपका अभियोग न्यायालय मे है, काशी उसके विजय का अनुष्ठान कर रहा है। बस, आप उसे एक बोतल लाल जल दीजिये।

होली का समय अति निकट है। एक सप्ताह से अधिक नही। अहा! मेरा हृदय इस समय कैसा खिल रहा है? मन मे आनन्द-प्रद गुदगुदी हो रही है। आँखें तुम्हें देखने के लिए अकुला रही है। यह सप्ताह बड़ी

कठिनाइयों से कटेगा। तब मैं अपने पिया के दर्शन पाऊँगी।

तुम्हारी—विरजन'

(४)

'प्यारे, मझगाँव

तुम पाषाणहृदय हो, कट्टर हो, स्नेह-हीन हो, निर्दयी हो, अकरुण हो, झूटे हो! मै तुम्हे और क्या गालिया दूँ और क्या कोसूँ? यदि तुम इस क्षण मेरे सम्मुख होते, तो इस वज्रहृदयता का उत्तर देती। मैं कह रही हूँ, तुम दगाबाज हो। मेरा क्या कर लोगे? नहीं आते तो मत आओ। मेरा प्राण लेना चाहते हो, ले लो। रुलाने की इच्छा है, रुलाओ। पर मै क्यों रोऊँ? मेरी बला रोवे। जब आपको इतना ध्यान नहीं कि दो घण्टे की यात्रा है, तनिक उसकी सुधि लेता जाऊँ, तो मुझे क्या पड़ी है कि रोऊँ और प्राण खोऊँ?

ऐसा क्रोध आ रहा है कि पत्र फाड़कर फेंक दूँ और फिर तुमसे बात न करूँ। हा! तुमने मेरी सारी अभिलाषाएँ कैसे धूल में मिलायी है? होली! होली! किसी के मुख से यह शब्द निकला और मेरे हृदय में गुदगुदी होने लगी, पर शोक! होली बीत गयी और मै निराश रह गयी। पहिले यह शब्द सुनकर आनन्द होता था। अब दुःख होता है। अपना अपना भाग्य है। गाँव के भूखे नंगे लँगोटी में फाग खेलें, आनन्द मनावें, रंग उड़ावें और मै अभागिनी अपनी चारपाई पर सफेद साड़ी पहिने पड़ी रहूँ। शपथ ले लो जो उसपर एक लाल धब्बा भी पड़ा हो। शपथ ले लो जो मैंने अबीर और गुलाल हाथ से छुई भी हो। मेरी इत्र मे बसी हुई अबीर, केवड़े मे घोली गुलाल, रचकर बनाये हुए पान सब तुम्हारी अकृपा का रोना रो रहे हैं। माधवी ने जब बहुत हठ की, तो मैंने एक लाल टीका लगवा लिया। पर आज से इन दोषारोपणों का अन्त होता है। यदि फिर कोई शब्द दोषारोपण का मुख से निकला तो जबान काट लूँगी।

परसों सायंकाल ही से गाँव में चहल-पहल मचने लगी। नवयुवकों का एक दल हाथ में डफ लिये, अश्लील शब्द बकते द्वार-द्वार फेरी लगाने लगा। मुझे ज्ञात न था कि आज यहाँ इतनी गालियाँ खानी पड़ेगी। लज्जाहीन शब्द उनके मुख से इस प्रकार बेधड़क निकलते थे जैसे फूल झड़ते हों। लज्जा और सकोच का नाम न था। पिता पुत्र के सन्मुख और पुत्र पिता के सम्मुख गालियाँ बक रहे थे। पिता ललकारकर पुत्र-वधू से कहता है—'आज होली है!' वधू घर में सिर नीचा किये हुए सुनती है और मुसकरा देती है। हमारे पटवारी साहब तो एक ही महात्मा निकले। आप मदिरा में मस्त, एक मैली-सी टोपी सिर पर रखे इस दल के नायक थे। उनकी बहू-बेटियाँ उनकी अश्लीलता के वेग से न बच सकीं। गालियाँ खाओ और हँसो। यदि वदन पर तनिक भी मैल आये, तो लोग समझेंगे कि इसका मुहर्रम का जन्म है। भली प्रथा है!

लगभग तीन बजे रात्रि के झुण्ड होली माता के पास पहुँचा। लड़के अग्नि-क्रीड़ादि में तत्पर थे। मैं भी कई स्त्रियों के साथ गयी, वहाँ स्त्रिया एक ओर होलियाँ गा रही थीं। निदान होली में आग लगाने का समय आया। अग्नि लगते ही ज्वाला भड़की और सारा आकाश स्वर्ण-वर्ण हो गया। दूर-दूर तक के पेड़-पत्ते प्रकाशित हो गये। अब इस अग्नि-राशि के चारों ओर लोग 'होली माता की जय!' चिल्ला-चिल्लाकर दौड़ने लगे। सबके हाथों मे गेहूँ और जौ की बालियाँ थीं, जिसको वे इस अग्नि में फेंकते जाते थे।

जब ज्वाला बहुत उत्तेजित हुई, तो लोग एक किनारे खड़े होकर 'कबीर' कहने लगे। छः घण्टे तक यही दशा रही। लकड़ी के कुन्दों से चटाक-पटाक के शब्द निकल रहे थे। पशुगण अपने-अपने खूटों पर मारे भय के चिल्ला रहे थे। तुलसा ने मुझसे कहा—'अब की होली की ज्वाला टेढ़ी जा रही है। कुशल नहीं। जब ज्वाला सीधी जाती है, गाँव मे साल भर आनन्द की बधाई बजती है। परन्तु ज्वाला का टेढी होना अशुभ

है।' निदान लपट कम होने लगी। आँच की प्रखरता मन्द हुई। तब कुछ लोग होली के निकट आकर ध्यान पूर्वक देखने लगे। जैसे कोई वस्तु ढूँढ रहे हों। तुलसा ने बतलाया कि जब वसन्त के दिन होली की नींव पड़ती है, तो पहिले एक एरण्ड गाड़ देते हैं। उसी पर लकड़ी और उपलों का ढेर लगाया जाता है। इस समय लोग उस एरण्ड के पौधे को ढूँढ रहे हैं। उस मनुष्य की गणना वीरों में होती है जो सबसे पहले उस पौधे पर ऐसा लक्ष्य करे कि वह टूट कर दूर जा गिरे। प्रथम पटवारी साहब पैंतरे बदलते आये, पर दस गज की दूरी से झाँककर चल दिये। तब राधा हाथ मे एक छोटा-सा सोंटा लिये साहस और दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ा और आग मे घुस कर वह भरपूर हाथ लगाया कि पौधा अलग जा गिरा। लोग उन टुकड़ों को लूटने लगे। माथे पर उसका टीका लगाते हैं और उसे शुभ समझते हैं।

यहाँ से अवकाश पाकर यह पुरुष-मण्डली देवीजी के चबूतरे की ओर बढी। पर यह न समझना, यहाँ देवीजी की प्रतिष्ठा की गई होगी। आज वे भी गालियाँ सुनना पसन्द करती हैं। छोटे बड़े सब उन्हे अश्लील गालियाँ सुना रहे थे। अभी थोड़े दिन हुये उन्हीं देवीजी की पूजा हुई थी। सच तो यह है कि गाँवों मे आजकल ईश्वर को गाली देना भी क्षम्य है। माता बहिनों की तो कोई गणना नहीं।

प्रभात होते ही लाला ने महाराज से कहा—'आज कोई दो सेर भंग पिसवा लो। दो प्रकार की अलग-अलग बनवा लो। सलोनी और मीठी।' महाराज निकले और कई मनुष्यों को पकड़ लाये। भाँग पीसी जाने लगी। बहुत से कुल्हड़ मँगाकर क्रमपूर्वक रखे गये। दो घड़ों में दोनों प्रकार की भाँग रखी गयी। फिर क्या था, तीन-चार घण्टों तक पियक्कड़ों का ताँता लगा रहा। लोग खूब बखान करते और गर्दन हिला हिलाकर महाराज की कुशलता की प्रशंसा करते थे। जहाँ किसी ने बखान किया कि महाराज ने दूसरा कुल्हड़ भरा और बोले—'यह सलोनी है। इसका भी स्वाद चख

लो। अजी, पी भी लो। क्या दिन-दिन होली आयेगी कि सब दिन हमारे हाथ की बूटी मिलेगी?' इसके उत्तर में किसान ऐसी दृष्टि से ताकता था, मानो किसी ने उसे सजीवन रस दे दिया और एक की जगह तीन-तीन कुल्हड़ चट कर जाता। पटवारी के जामाता मुशी जगदम्बाप्रसाद साहब का शुभागमन हुआ है। आप कचहरी म आरायज़नवीस हैं। उन्हें महाराज ने इतनी पिला दी कि आपे से बाहर हो गये और नाचने-कूदने लगे। सारा गाँव उनसे पदोरी करता था। एक किसान आता है और उनकी ओर मुसकराकर कहता है—'तुम यहाँ ठाढ़ी हो, घर जाके भोजन बनाओ, हम आवत हैं।' इस पर बड़े ज़ोर की हँसी होती है। काशी भर मद में माता हुआ लठ कन्धे पर रखे आता और सभास्थित जनों की ओर बनावटी क्रोध से देखकर गरजता है—महाराज, यह अच्छी बात नहीं है कि तुम हमारी नयी बहुरिया से मजा लूटत हो।' यह कहकर मुंशीजी को छाती से लगा लेता है।

मुशीजी बेचारे छोटे कद के मनुष्य, इधर-उधर फड़फड़ाते हैं, पर नक्कारखाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है? कोई उन्हें प्यार करता है और गले लगाता है। दोपहर तक यही छेड़ छाड़ हुआ की। तुलसा अभी तक बैठी हुई थी। मैंने उससे कहा—'आज हमारे यहाँ तुम्हारा न्योता है। हम-तुम संग खायेंगी।' यह सुनते ही महाराजिन दो थालियों में भोजन परोसकर लायी। तुलसा इस समय खिड़की की ओर मुँह करके खड़ी थी। मैंने जो उसको हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा, तो उसे अपनी प्यारी-प्यारी आँखों से मोती के दाने बिखेरते हुए पाया। मैं उसे गले लगाकर बोली—'सखी, सच-सच बतला दो, क्यों रोती हो? हमसे कोई दुराव मत रखो।' इस पर वह और भी सिसकने लगी। जब मैंने बहुत हठ की, तो उसने सिर घुमाकर कहा—'बहिन! आज प्रातः-काल उनपर निशान पड़ गया। न जाने उनपर क्या बीत रही होगी।' यह कहकर वह फूट फूटकर रोने लगी। ज्ञात हुआ कि राधा के पिता ने कुछ

ऋण लिया था। वह अभी तक चुका न सका था। महाजन ने सोचा कि इसे हवालात ले चलूँ तो रुपये वसूल हो जायँ। राधा कन्नी काटता फिरता था। आज द्वेषियो को अवसर मिल गया और वे अपना काम कर गये। शोक! मूल धन बीस रुपये से अधिक न था। प्रथम मुझे ज्ञात होता तो बेचारे पर त्योहार के दिन यह आपत्ति न आने पाती। मैंने चुपके से महाराज को बुलाया और उन्हें बीस रुपये देकर राधा को छुड़ाने के लिए भेजा।

उस समय मेरे द्वार पर एक टाट बिछा दिया गया था। लालाजी मध्य मे कालीन पर बैठे थे। किसान लोग घुटने तक धोतियाँ बाँधे, कोई कुर्ता पहिने, कोई नग्न देह, कोई सिर पर पगड़ी बाँधे और कोई नंगे सिर मुख पर अबीर लगाये—जो उनके काले वर्ण पर विशेष छटा दिखा रही थी—आने लगे। जो आता, लालाजी के पैरों पर थोड़ी-सी अबीर रख देता। लालाजी भी अपनी तश्तरी मे से थोड़ी-सी अबीर निकालकर उसके माथे पर लगा देते और मुसकराकर कोई दिल्लगी की बात कह देते थे। वह निहाल हो जाता, सादर प्रणाम करता और ऐसा प्रसन्न होकर आ बैठता, मानो किसी रंक नें रत्न-राशि पायी है मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था कि लालाजी इन उजड्ड देहातियो के साथ बैठकर ऐसे आनन्द से वार्तालाप कर सकते हैं। इसी बीच मे काशी भर आया। उसके हाथ मे एक छोटी सी कटोरी थी। वह उसमें अबीर लिये हुए था। उसने अन्य लोगों की भाँति लालाजी के चरणों पर अबीर नहीं रखी, किन्तु बड़ी धृष्टता से मुट्ठी-भर लेकर उनके मुख पर भली-भाँति मल दी। मैं तो डरी, कहीं लालाजी रुष्ट न हो जायँ। पर वह बहुत प्रसन्न हुए और स्वयं उन्होंने भी एक टीका लगाने के स्थान पर दोनों हाथों से उसके मुख पर अबीर मली। उसके साथी उसकी ओर इस दृष्टि से देखते थे कि निस्सन्देह तू वीर है और इस योग्य है कि हमारा नायक बने। इसी प्रकार एक एक करके दो-ढाई सौ मनुष्य एकत्र हुए। अचानक उन्होंने कहा—'आज कहाँ राधा

नहीं दीख पड़ता, क्या बात है ? कोई उसके घर जाके देखे तो।' मुशी जगदम्बाप्रसाद अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अच्छा अवसर देखकर बोल उठे—'हुजूर वह दफ़ा १३ न० अलिफ़ ऐक्ट (ज) में गिरफ्तार हो गया। रामदीन पाडे ने वारण्ट जारी करा दिया।' दुरीच्छा से रामदीन पाडे भी वहाँ बैठे हुए थे। लाला ने उनकी ओर परम तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'क्यों पाडेजी, इस दीन को बन्दी गृह में बन्द करने से तुम्हारा घर भर जायगा ? यही मनुष्यता और शिष्टता अब रह गयी है। तुम्हें तनिक भी दया न आयी कि आज होली के दिन उसे स्त्री और बच्चों से अलग किया। मै तो सत्य कहता हूँ कि यदि मैं राधा होता, तो बन्दीगृह से लौटकर मेरा प्रथम उद्योग यही होता कि जिसने मुझे यह दिन दिखाया है, उसे मै भी कुछ दिनों हल्दी पिलवा दूँ। तुम्हें लाज नहीं आती कि इतने बड़े महाजन होकर तुमने बीस रुपये के लिये एक दीन मनुष्य को इस प्रकार कष्ट में डाला। डूब मरना था ऐसे लोभ पर।' लालाजी को वस्तुत. क्रोध आ गया था। रामदीन ऐसा लज्जित हुआ कि सब सिट्टी पिट्टी भूल गयी। मुख से बात न निकली। चुपके से न्यायालय की ओर चला। सब के सब कृषक उसकी ओर क्रोध पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। यदि लालाजी का भय न होता तो पाडेजी की हड्डी-पसली वहीं चूर हो जाती।

इसके पश्चात् लोगों ने गाना आरम्भ किया। मद मे तो सब-के-सब माते ही थे, इस पर लालाजी के इस भ्रातृ-भाव के सम्मान से उनके मन और भी उत्साहित हो गये। खूब जी तोड़कर गाये। डफें तो इतने जोर से बजती थीं कि अब फटीं और अब फटीं। जगदम्बाप्रसाद ने दुहरा नशा चढाया था। कुछ तो उनके मन मे स्वत. उमग उत्पन्न हुई, कुछ दूसरो ने उत्तेजना दी। आप मध्य सभा मे खड़े होकर नाचने लगे, विश्वास मानो, नाचने लगे। मैंने अचकन, टोपी, धोती और मूँछोंवाले पुरुष को नाचते न देखा था। आध घण्टे तक वे बन्दरों की भाँति उछलते-कूदते रहे। निदान मद ने उन्हें पृथ्वी पर लिटा दिया। तत्पश्चात् एक और

अहीर उठा। एक अहिरिन की स्त्री मण्डली से निकली और दोनों चौक में जाकर नाचने लगे। दोनों नवयुवक और फुर्तीले थे। उनकी कमर और पीठ की लचक विलक्षण थी। उनके हाव-भाव, कमर का लचकना रोम-रोम का फड़कना, गर्दन का मोड़, अंगों का मरोड़ देखकर विस्मय होता था। बहुत अभ्यास और परिश्रम का कार्य है।

अभी यहाँ नाच हो ही रहा था कि सामने बहुत-से मनुष्य लंबी-लंबी लाठियाँ कन्धों पर रखे आते दिखायी दिये। उनके संग डफ भी था। कई मनुष्य हाथों मे झाँझ और मजीरे लिये हुए थे। वे गाते-बजाते आये और हमारे द्वार पर रुके। अकस्मात् तीन चार मनुष्यों ने मिलकर ऐसे आकाशभेदी शब्दों में "अररर...कबीर" की ध्वनि लगायी कि घर काँप उठा। लालाजी निकले। ये लोग उसी गाँव के थे, जहाँ निकासी के दिन लाठियाँ चली थीं। लालाजी को देखते ही कई पुरुषों ने उनके मुख पर अबीर मला। लालाजी ने भी प्रत्युत्तर दिया। फिर लोग फर्श पर बैठे। इलायची और पान से उनका सम्मान किया गया। फिर गाना हुआ। इस गाँववालों ने भी अबीरें मलीं और मलवायीं। जब ये लोग विदा होने लगे, तो यह होली गायी।

'सदा आनन्द रहे एहि द्वारे मोहन खेलें होरी।'

कितना सुहावना गीत है! मुझे तो इसमें रस और भाव कूट-कूटकर भरा हुआ प्रतीत होता है। होली का भाव कैसे साधारण और संक्षिप्त शब्दो में प्रकट कर दिया गया है। मैं बारम्बार यह प्यारा गीत गाती हूँ और आनन्द लूटती हूँ। होली का त्योहार परस्पर प्रेम और मेल बढ़ाने के लिए है। सम्भव न था कि वे ही लोग, जिनसे कुछ दिन पहिले लाठियाँ चली थीं, इस गाँव मे इस प्रकार बेधड़क चले आते। पर यह होली का दिन है। आज किसी को किसी से द्वेष नहीं है। आज प्रेम और आनन्द का स्वराज्य है। आज के दिन यदि दुखी हो तो परदेशी बालम की अबला। रोवे तो युवती विधवा। इनके अतिरिक्त और सबके लिए

नहीं दीख पड़ता, क्या बात है ? कोई उसके घर जाके देखे तो।' मुशी जगदम्बाप्रसाद अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अच्छा अवसर देखकर बोल उठे—'हुजूर वह दफा १३ न० अलिफ ऐक्ट (ज) में गिरफ्तार हो गया। रामदीन पाडे ने वारण्ट जारी करा दिया।' दुर्भाग्य से रामदीन पाडे भी वहाँ बैठे हुए थे। लाला ने उनकी ओर परम तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'क्यों पाडेजी, इस दीन को बन्दी गृह में बन्द करने से तुम्हारा घर भर जायगा ? यही मनुष्यता और शिष्टता अब रह गयी है। तुम्हें तनिक भी दया न आयी कि आज होली के दिन उसे स्त्री और बच्चों से अलग किया। मै तो सत्य कहता हूॅ कि यदि मै राधा होता, तो बन्दीगृह से लौटकर मेरा प्रथम उद्योग यही होता कि जिसने मुझे यह दिन दिखाया है, उसे मैं भी कुछ दिनों हल्दी पिलवा दूँ। तुम्हें लाज नहीं आती कि इतने बड़े महाजन होकर तुमने बीस रुपये के लिये एक दीन मनुष्य को इस प्रकार कष्ट में डाला। डूब मरना था ऐसे लोभ पर।' लालाजी को वस्तुत. क्रोध आ गया था। रामदीन ऐसा लज्जित हुआ कि सब सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। मुख से बात न निकली। चुपके से न्यायालय की ओर चला। सब के सब कृषक उसकी ओर क्रोध पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। यदि लालाजी का भय न होता तो पाडेजी की हड्डी-पसली वहीं चूर हो जाती।

इसके पश्चात् लोगों ने गाना आरम्भ किया। मद में तो सब-के-सब माते ही थे, इस पर लालाजी के इस भ्रातृ-भाव के सम्मान से उनके मन और भी उत्साहित हो गये। खूब जी तोड़कर गाये। डफें तो इतने जोर से बजती थीं कि अब फटीं और अब फटीं। जगदम्बाप्रसाद ने दुहरा नशा चढाया था। कुछ तो उनके मन मे स्वतः उमग उत्पन्न हुई, कुछ दूसरों ने उत्तेजना दी। आप मध्य सभा मे खड़े होकर नाचने लगे, विश्वास मानो, नाचने लगे। मैंने अचकन, टोपी, धोती और मूँछोंवाले पुरुष को नाचते न देखा था। आध घण्टे तक वे बन्दरों की भॉति उछलते-कूदते रहे। निदान मद ने उन्हें पृथ्वी पर लिटा दिया। तत्पश्चात् एक और

अहीर उठा। एक अहिरिन भी स्त्री मण्डली से निकली और दोनों चौक में जाकर नाचने लगे। दोनों नवयुवक और फुर्तीले थे। उनकी कमर और पीठ की लचक विलक्षण थी। उनके हाव-भाव, कमर का लचकना रोम-रोम का फड़कना, गर्दन का मोड़, अंगों का मरोड़ देखकर विस्मय होता था। बहुत अभ्यास और परिश्रम का कार्य है।

अभी यहाँ नाच हो ही रहा था कि सामने बहुत-से मनुष्य लम्बी-लंबी लाठियाँ कन्धों पर रखे आते दिखायी दिये। उनके संग डफ भी था। कई मनुष्य हाथों मे झाँझ और मजीरे लिये हुए थे। वे गाते-बजाते आये और हमारे द्वार पर रुके। अकस्मात् तीन चार मनुष्यों ने मिलकर ऐसे आकाशभेदी शब्दों मे "अररर...कबीर" की ध्वनि लगायी कि घर काँप उठा। लालाजी निकले। ये लोग उसी गाँव के थे, जहाँ निकासी के दिन लाठियाँ चली थीं। लालाजा को देखते ही कई पुरुषों ने उनके मुख पर अबीर मला। लालाजी ने भी प्रत्युत्तर दिया। फिर लोग फर्श पर बैठे। इलायची और पान से उनका सम्मान किया गया। फिर गाना हुआ। इस गाँववालों ने भी अबीरें मलीं और मलवायीं। जब ये लोग विदा होने लगे, तो यह होली गायी।

'सदा आनन्द रहे एहि द्वारे मोहन खेलें होरी।'

कितना सुहावना गीत है! मुझे तो इसमे रस और भाव कूट-कूटकर भरा हुआ प्रतीत होता है। होली का भाव कैसे साधारण और संक्षिप्त शब्दों में प्रकट कर दिया गया है। मै बारम्बार यह प्यारा गीत गाती हूँ और आनन्द लूटती हूँ। होली का त्योहार परस्पर प्रेम और मेल बढ़ाने के लिए है। सम्भव न था कि वे ही लोग, जिनसे कुछ दिन पहिले लाठियाँ चली थीं, इस गाँव मे इस प्रकार बेधड़क चले आते। पर यह होली का दिन है। आज किसी को किसी से द्वेष नहीं है। आज प्रेम और आनन्द का स्वराज्य है। आज के दिन यदि दुखी हो तो परदेशी बालम की अबला। रोवे तो युवती विधवा। इनके अतिरिक्त और सबके लिए

नही दीख पड़ता, क्या बात है ? कोई उसके घर जाके देखे तो।' मुशी जगदम्बाप्रसाद अपनी योग्यता प्रकाशित करने का अच्छा अवसर देखकर बोल उठे—'हुजूर वह दफ़ा १३ न० अलिफ़ ऐक्ट (अ) मे गिरफ्तार हो गया। रामदीन पाडे ने वारण्ट जारी करा दिया।' इच्छा से रामदीन पाडे भी वहाँ बैठे हुए थे। लाला ने उनकी ओर परम तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'क्यों पाडेजी, इस दीन को बन्दी गृह मे बन्द करने से तुम्हारा घर भर जायगा ? यही मनुष्यता और शिष्टता अब रह गयी है। तुम्हे तनिक भी दया न आयी कि आज होली के दिन उसे स्त्री और बच्चो से अलग किया। मै तो सत्य कहता हूँ कि यदि मै राधा होता, तो बन्दीगृह से लौटकर मेरा प्रथम उद्योग यही होता कि जिसने मुझे यह दिन दिखाया है, उसे मै भी कुछ दिनो हल्दी पिलवा दूँ। तुम्हे लाज नही आती कि इतने बड़े महाजन होकर तुमने बीस रुपये क लिये एक दीन मनुष्य को इस प्रकार कष्ट मे डाला। डूब मरना था ऐसे लोभ पर।' लालाजी को वस्तुत. क्रोध आ गया था। रामदीन ऐसा लज्जित हुआ कि सब सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। मुख से बात न निकली। चुपके से न्यायालय की ओर चला। सब के सब कृषक उसकी ओर क्रोध पूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। यदि लालाजी का भय न होता तो पाडेजी की हड्डी-पसली वही चूर हो जाती।

इसके पश्चात् लोगो ने गाना आरम्भ किया। मद मे तो सब-के-सब माते ही थे, इस पर लालाजी के इस भ्रातृ-भाव के सम्मान से उनके मन और भी उत्साहित हो गये। खूब जी तोड़कर गाये। डफें तो इतने जोर से बजती थी कि अब फटी और अब फटी। जगदम्बाप्रसाद ने दुहरा नशा चढाया था। कुछ तो उनके मन मे स्वत. उमग उत्पन्न हुई, कुछ दूसरो ने उत्तेजना दी। आप मध्य सभा मे खड़े होकर नाचने लगे, विश्वास मानो, नाचने लगे। मैने अचकन, टोपी, धोती और मूँछोवाले पुरुष को नाचते न देखा था। आध घण्टे तक वे बन्दरो की भाँति उछलते-कूदते रहे। निदान मद ने उन्हे पृथ्वी पर लिटा दिया। तत्पश्चात् एक और

अहीर उठा। एक अहिरिन की स्त्री मण्डली से निकली और दोनों चौक मे जाकर नाचने लगे। दोनों नवयुवक और फुर्तीले थे। उनकी कमर और पीठ की लचक विलक्षण थी। उनके हाव-भाव, कमर का लचकना रोम-रोम का फड़कना, गर्दन का मोड़, अंगों का मरोड देखकर विस्मय होता था। बहुत अभ्यास और परिश्रम का कार्य है।

अभी यहाँ नाच हो ही रहा था कि सामने बहुत-से मनुष्य लबी-लंबी लाठियाँ कन्धो पर रखे आते दिखायी दिये। उनके संग डफ भी था। कई मनुष्य हाथों में झाँझ और मजीरे लिये हुए थे। वे गाते-बजाते आये और हमारे द्वार पर रुके। अकस्मात् तीन चार मनुष्यों ने मिलकर ऐसे आकाशभेदी शब्दों में "अररररर...कबीर" की ध्वनि लगायी कि घर काँप उठा। लालाजी निकले। ये लोग उसी गाँव के थे, जहाँ निकासी के दिन लाठियाँ चली थीं। लालाजा को देखते ही कई पुरुषो ने उनके मुख पर अबीर मला। लालाजी ने भी प्रत्युत्तर दिया। फिर लोग फर्श पर बैठे। इलायची और पान से उनका सम्मान किया गया। फिर गाना हुआ। इस गाँववालों ने भी अबीरें मलीं और मलवायीं। जब ये लोग विदा हाने लगे, तो यह होली गायी।

'सदा आनन्द रहे एहि द्वारे मोहन खेलें होरी।'

कितना सुहावना गीत है! मुझे तो इसमे रस और भाव कूट-कूटकर भरा हुआ प्रतीत होता है। होली का भाव कैसे साधारण और सन्तिप्त शब्दो मे प्रकट कर दिया गया है। मै बारम्बार यह प्यारा गीत गाती हूँ और आनन्द लूटती हूँ। हाली का त्योहार परस्पर प्रेम और मेल बढाने के लिए है। सम्भव न था कि वे ही लोग, जिनसे कुछ दिन पहिले लाठियाँ चली थीं, इस गाँव मे इस प्रकार बेधड़क चले आते। पर यह होली का दिन है। आज किसी को किसी से द्वेष नहीं है। आज प्रेम और आनन्द का स्वराज्य है। आज के दिन यदि दुखी हो तो परदेशी बालम की अबला। रोवे तो युवती विधवा। इनके अतिरिक्त और सबके लिए

आनन्द की बधाई है।

सन्ध्या-समय गाँव की सब स्त्रियाँ हमारे यहाँ होली खेलने आयीं। माताजी ने उन्हें बड़े आदर से बिठाया। रंग खेला, पान बाँटा। मैं मारे भय के बाहर न निकली। इस प्रकार छुट्टी मिली। अब मुझे ध्यान आया की माधवी दोपहर से गायब है मैंने सोचा था स्यात् गाँव में होली खेलने गयी हो। परन्तु इन स्त्रियों के संग वह न थी। तुलसा अभी तक चुपचाप खिड़की की ओर मुँह किये बैठी थी। दीपक में बत्ती पड़ रही थी कि वह अकस्मात् उठी, मेरे चरणों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने खिड़की की ओर झाँका तो देखती हूँ कि आगे-आगे महाराज, उनके पीछे राधा और सबसे पीछे रामदीन पांडे चले आ रहे हैं। गाँव के बहुत से आदमी उनके सङ्ग हैं। राधा का बदन कुम्हलाया हुआ है। लालाजी ने ज्योंही सुना कि राधा आ गया, चट बाहर निकल आये और बड़े स्नेह से उसको कण्ठ से लगा लिया, जैसे कोई अपने पुत्र को गले लगाता है। राधा चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। तुलसी से भी न रहा गया। वह सीढ़ियों से उतरी और लालाजी के चरणों पर गिर पड़ी। लालाजी ने उसे भी बड़े प्रेम से उठाया। मेरी आँखों मे भी उस समय आँसू न रुक सके। गाँव के बहुत से मनुष्य रो रहे थे। बड़ा करुणा-पूर्ण दृश्य था। लालाजी के नेत्रों में मैंने कभी आँसू न देखे थे। वे इस समय दखे रामदीन पाडेय मस्तक झुकाये ऐसा खड़ा था, मानो गोहत्या की हो। उसने कहा—'मेरे रुपए मिल गये, पर इच्छा है, इनसे तुलसा के लिए एक गाय ले दूँ।'

राधा और तुलसा दोनों अपने घर गये। परन्तु थोड़ी देर में तुलसा माधवीका हाथ पकड़े हँसती हुई मेरे घर आयी और बोली—इनसे पूछो, ये अब तक कहाँ थीं?

मैं - कहाँ थीं? दोपहर से गायब हो।

माधवी—यहीं तो थी।

मैं—यहाँ कहाँ थी? मैंने तो दोपहर से नहीं देखा। सच सच बता

दो, मैं रुष्ट न होऊँगी।

माधवी—तुलसा के घर तो चली गयी थी।

मैं—तुलसा तो यहाँ बैठी है, वहाँ अकेली क्या सोती रहीं?

तुलसा—(हँसकर) सोती काहे को जागती रहीं। भोजन बनाती रहीं, बरतन चौका करती रहीं।

माधवी—हाँ, चौका-बरतन करती रही। कोई तुम्हारा नौकर लगा हुआ है न!

ज्ञात हुआ कि जब मैंने महाराज को राधा को छुड़ाने के लिए भेजा था, तब से माधवी तुलसा के घर भोजन बनाने मे लीन रही। उसके किवाड़ खोले। यहाँ से आटा घी, शक्कर सब ले गयी। आग जलायी और पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, गुलगुले और मीठे समोसे सब बनाये। उसने सोचा था कि मैं यह सब बनाकर चुपके से चली जाऊँगी। जब राधा और तुलसा जायेंगे, तो विस्मित होंगे कि कौन बना गया! पर स्यात् विलम्ब अधिक हो गया और अपराधी पकड़ लिया गया। देखा, कैसी सुशीला बाला है!

अब विदा होती हूँ। अपराध क्षमा करना। तुम्हारी चेरी हूँ। जैसे रखोगे वैसे रहूगी। यह अबीर औरं गुलाल भेजती हूँ। यह तुम्हारी दासी का उपहार है। तुम्हें हमारी शपथ, मिथ्या सभ्यता के उमङ्ग में आकर इसे फेंक न देना, नहीं तो मेरा हृदय दुखी होगा। तुम्हारी,

विरजन

(५)

प्यारे मझगाँव

तुम्हारे पत्र ने बहुत रुलाया। अब नहीं रहा जाता। मुझे बुला लो। एक बार देखकर चली आऊँगी। सच बताओ, यदि मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ, तो हँसी तो न उड़ाओगे? न-जाने मन मे क्या समझोगे? पर कैसे आऊँ? तुम लालाजी को लिखो, खूब! वे कहेंगे यह नयी धुन समायी है।

आनन्द की बधाई है।

सन्ध्या-समय गाँव की सब स्त्रियाँ हमारे यहाँ होली खेलने आयीं। माताजी ने उन्हें बड़े आदर से बिठाया। रंग खेला, पान बाँटा। मैं मारे भय के बाहर न निकली। इस प्रकार छुट्टी मिली। अब मुझे ध्यान आया की माधवी दोपहर से गायब है मैंने सोचा था स्यात् गाँव में होली खेलने गयी हो। परन्तु इन स्त्रियों के संग वह न थी। तुलसा अभी तक चुपचाप खिड़की की ओर मुँह किये बैठी थी। दीपक में बत्ती पड़ रही थी कि वह अकस्मात् उठी, मेरे चरणों पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने खिड़की की ओर झाँका तो देखती हूँ कि आगे-आगे महाराज, उनके पीछे राधा और सबसे पीछे रामदीन पांडे चले आ रहे हैं। गाँव के बहुत से आदमी उनके सङ्ग हैं। राधा का बदन कुम्हलाया हुआ है। लालाजी ने ज्योंही सुना कि राधा आ गया, चट बाहर निकल आये और बड़े स्नेह से उसको कण्ठ से लगा लिया, जैसे कोई अपने पुत्र को गले लगाता है। राधा चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। तुलसी से भी न रहा गया। वह सीढ़ियों से उतरी और लालाजी के चरणों पर गिर पड़ी। लालाजी ने उसे भी बड़े प्रेम से उठाया। मेरी आँखों में भी उस समय आँसू न रुक सके। गाँव के बहुत से मनुष्य रो रहे थे। बड़ा करुणा-पूर्ण दृश्य था। लालाजी के नेत्रों में मैंने कभी आँसू न देखे थे। वे इस समय देखे रामदीन पाण्डेय मस्तक झुकाये ऐसा खड़ा था, मानो गोहत्या की हो। उसने कहा—'मेरे रुपए मिल गये, पर इच्छा है, इनसे तुलसा के लिए एक गाय ले दूँ।'

राधा और तुलसा दोनों अपने घर गये। परन्तु थोड़ी देर में तुलसा माधवी का हाथ पकड़े हँसती हुई मेरे घर आयी और बोली—इनसे पूछो, ये अब तक कहाँ थीं?

मैं - कहाँ थी? दोपहर से गायब हो।

माधवी—यहीं तो थी।

मैं—यहाँ कहाँ थी? मैंने तो दोपहर से नहीं देखा। सच सच बता

दो, मैं रुष्ट न होऊँगी।

माधवी—तुलसा के घर तो चली गयी थी।

मैं—तुलसा तो यहाँ बैठी है, वहाँ अकेली क्या सोती रहीं?

तुलसा—(हँसकर) सोती काहे को जागती रहीं। भोजन बनाती रहीं, बरतन चौका करती रहीं।

माधवी—हाँ, चौका-बरतन करती रही। कोई तुम्हारा नौकर लगा हुआ है न!

ज्ञात हुआ कि जब मैंने महाराज को राधा को छुड़ाने के लिए भेजा था, तब से माधवी तुलसा के घर भोजन बनाने में लीन रही। उसके किवाड़ खोले। यहाँ से आटा घी, शक्कर सब ले गयी। आग जलायी और पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, गुलगुले और मीठे समोसे सब बनाये। उसने सोचा था कि मैं यह सब बनाकर चुपके से चली जाऊँगी। जब राधा और तुलसा जायेंगे, तो विस्मित होंगे कि कौन बना गया! पर स्यात् विलम्ब अधिक हो गया और अपराधी पकड़ लिया गया। देखा, कैसी सुशीला बाला है!

अब विदा होती हूँ। अपराध क्षमा करना। तुम्हारी चेरी हूँ। जैसे रखोगे वैसे रहूगी। यह अबीर और गुलाल भेजती हूँ। यह तुम्हारी दासी का उपहार है। तुम्हें हमारी शपथ, मिथ्या सभ्यता के उमङ्ग में आकर इसे फेंक न देना, नहीं तो मेरा हृदय दुखी होगा।

तुम्हारी,
विरजन

(५)

प्यारे मझगाँव

तुम्हारे पत्र ने बहुत रुलाया। अब नहीं रहा जाता। मुझे बुला लो। एक बार देखकर चली आऊँगी। सच बताओ, यदि मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँ, तो हँसी तो न उड़ाओगे? न-जाने मन में क्या समझोगे? पर कैसे आऊँ? तुम लालाजी को लिखो, खूब! वे कहेंगे यह नयी धुन समायी है।

कल चारपाई पर पड़ी थी, भोर हो गया था, शीतल मन्द पवन चल रहा था कि स्त्रियों के गाने का शब्द सुनायी पड़ा। स्त्रियाँ अनाज का खेत काटने जा रही थीं। झाँककर देखा तो दस-दस बारह-बारह स्त्रियों का एक-एक गोल था। सबके हाथों में हँसिया, कन्धों पर गठियाँ बाँधने की रस्सी और सिर पर भुने हुये मटर की छबड़ी थी। ये इस समय जाती है, कहीं बारह बजे लौटेंगी। आपस में गाती, चुहलें करती चली जाती थीं।

दोपहर तक बड़ी कुशलता रही। अचानक आकाश मेघाच्छन्न हो गया। आँधी आ गयी और ओले गिरने लगे। मैने इतने बड़े ओले गिरते न देखे थे। आलू से बड़े और ऐसी तेजी से गिरे जैसे बन्दूक से गोली। क्षण-भर में पृथ्वी पर एक फुट ऊँचा बिछावन बिछ गया। चारों तरफ से कृषक भागने लगे। गायें, बकरियाँ, भेड़े सब चिल्लाती हुई पेड़ों की छाया ढूंढती फिरती थीं। मैं डरी कि न-जाने तुलसा पर क्या बीती। आँख फैलाकर देखा तो खुले मैदान में तुलसा, राधा और मोहनी गाय दीख पड़ीं। तीनों घमासान ओले की मार मे पड़े थे। तुलसा के सिरपर एक छोटा सी टोकरी थी और राधा के सिर पर एक बड़ा-सा गट्ठा। मेरे नेत्रों में आँसू भर आये कि न-जाने इन बेचारों की क्या गति होगी। अकस्मात् एक प्रखर झोंके ने राधा के सिर से गट्ठा गिरा दिया। गट्ठा का गिरना था कि चट तुलसा ने अपनी टोकरी उसके सिर पर औंधा दी। न-जाने उस पुष्प ऐसे सिर पर कितने ओले पड़े। उसके हाथ कभी पीठ पर जाते, कभी सिर सुहलाते। अभी एक सेकेण्ड से अधिक यह दशा न रही होगी कि राधा ने बिजली की भाँति लपककर गट्ठा उठा लिया और टोकरी तुलसा को दे दी। कैसा घना प्रेम है।

अनर्थकारी दुर्दैव ने सारा खेल बिगाड़ दिया। प्रातःकाल स्त्रियाँ गाती हुई जा रही थीं। सन्ध्या को घर-घर शोक छाया हुआ था। कितनों के सिर लहू-लुहान हो गये, कितने हल्दी पी रहे हैं। खेती सत्यानाश हो गयी। अनाज बर्फ के तले दब गया। ज्वर का प्रकोप है। सारा गाँव

अस्पताल बना हुआ है। काशी भर का भविष्य प्रवचन प्रमाणित हुआ। होली की ज्वाला का भेद प्रकट हो गया। खेती की यह दशा और लगान उगाही जा रही है। बड़ी विपत्ति का सामना है। मार पीट, गालो, अप-शब्द सभी साधनो से काम लिया जा रहा है। दीनो पर यह दैवी कोप!

तुम्हारी,

विरजन,

(६)

'मेरे प्राणाधिक प्रियतम' मझगाँव

पूरे पन्द्रह दिन के पश्चात् तुमने विरजन की सुधि ली। पत्र को बारम्बार पढा। तुम्हारा पत्र रुलाये बिना नहीं मानता। मैं यों भी बहुत रोया करती हूँ। तुमको किन-किन बातों की सुधि दिलाऊँ? मेरा हृदय ऐसा निर्बल है कि जब कभी इन बातों की ओर ध्यान जाता है तो विचित्र दशा हो जाती है। गर्मी सी लगती है। एक बड़ी व्यग्र करनेवाली, बड़ी स्वादिष्ट, बहुत रुलानेवाली, बहुत दुराशापूर्ण वेदना उत्पन्न होती है। जानती हूँ कि तुम नहीं आ रहे हो और नहीं आओगे; पर बार बार द्वार पर जाकर खड़ी हो जाती हूँ कि आ तो नहीं गये।

कल सायकाल यहाँ एक बड़ा चित्ताकर्षक प्रहसन देखने में आया। यह धोबियों का नाच था। पन्द्रह-बीस मनुष्यों का एक समुदाय था। उसमें एक नवयुवक श्वेत पेशवाज पहिने कमर में असंख्य घटियाँ बाँधे, पाँव में घूँघरू पहिने, सिर पर लाल टोपी रखे नाच रहा था। जब पुरुष नाचता था तो मृदंग बजने लगती थी। ज्ञात हुआ कि ये लोग होली का पुरस्कार माँगने आये है। यह जाति पुरस्कार खूब लेती है। आपके यहाँ कोई काम-काज पड़े, उन्हें पुरस्कार दीजिये, और उनके यहाँ कोई काम-काज पड़े, तो भी उन्हे पारितोपिक मिलना चाहिए। ये लोग नाचते समय गीत नहीं गाते। इनका गाना इनकी कविता है। पेशवाजवाला पुरुष दंग पर हाथ रखकर एक बिरहा कहता है। दूसरा पुरुष सामने से

आकर उसका प्रत्युत्तर देता है और दोनो तत्क्षण यह विरहा रचते हैं। इस जाति में कवित्व शक्ति अत्यधिक है। इन विरहो को ध्यान से सुनो तो उनमे बहुधा उत्तम कवित्व-भाव प्रकट किये जाते है। पेशवाजवाले पुरुष ने प्रथम जा विरहा कहा था, उसका यह अर्थ था कि ऐ धोबी के बच्चो! तुम किसके द्वार पर आकर खड़े हो? दूसरे ने उत्तर दिया अब न अकबर शाह है, न राजा भोज, अब जो है हमारे मालिक है, उन्ही से माँगा। तीसरे बिरहे का अर्थ यह है कि याचको की प्रतिष्ठा कम होती है, अतएव कुछ मत माँगो गा बजाकर चले चलो, देनेवाला बिन माँगे ही देगा। घण्टे भर से ये लोग बिरहे कहते रहे। तुम्हें प्रतीति न होगी, उनके मुख से विरहे इस प्रकार बेधड़क निकलते थे कि आश्चर्य होता था। स्यात् इतनी सुगमता से वे बातें भी न कर सकते हों। यह जाति बडी पियक्कड़ है। मदिरा पानी की भाँति पीती है। विवाह में मदिरा गौने में मदिरा, पञ्चायत में मदिरा, पूजा पाठ मे मदिरा, पुरस्कार माँगेंगे तो पीने के लिए। धुलाई माँगेंगे तो यह कहकर कि आज पीने के लिए पैसे नहीं हैं। विदा होते समय बेचू धोबी ने जो विरहा कहा था, वह काव्यालकार से भरा हुआ है।

तुम्हारा परिवार इस प्रकार बढ़े जैसे गंगाजी का जल। लड़के फूलें फलें जैसे आम का बौर। मालकिन का सोहाग सदा बना रहे, जैसे दूब की हरियाली।' कैसी अनोखी कविता है?

तुम्हारी,
विरजन'

(७)

'प्यारे मझगाँव

एक सप्ताह तक चुपचाप रहने की क्षमा चाहती हू। मुझे इस सप्ताह में तनिक भी अवकाश न मिला। माधवी बीमार हो गयी थी, पहिले तो कुनैन की कई पुड़िया खिलायी गयीं। पर जब इससे लाभ न हुआ और उसकी दशा और भी बुरी होने लगी, तो दिहलूराय वैद्य बुलाये गये।

कोई पचास वर्ष की आयु होगी। नगे पाँव, सिर पर एक पगड़ी बाँधे, कन्धे पर अँगोछा रखे, हाथ मे मोटा-सा सोटा लिये द्वार पर आकर बैठ गये। घर के बड़े जमींदार है, पर किसी ने उनके शरीर पर मिर्जई तक नहीं देखी। उन्हे इतना अवकाश ही नहीं कि अपने शरीर-पालन की ओर ध्यान दें। इस मंडल मे आठ दस कोस तक लोग उनपर विश्वास करते है। न वे हकीम को जानें, न डाक्टर को। उनके हकीम-डाक्टर जो कुछ हैं, वे दिहलूराय हैं। सन्देशा सुनते ही आकर द्वार पर बैठ गये। डाक्टरों की भाँति नहीं कि प्रथम सवारी माँगेगे—वह भी तेज जिसमें उनका समय नष्ट न हो। आपके घर आकर ऐसे बैठे रहेंगे, मानो गूँगे का गुड़ खा गये है। रोगी को देखने जायेंगे तो इस प्रकार भागेंगे, मानो कमरे की वायु मे विष भरा हुआ है। रोग-परिचय और औषध का उपचार केवल दो मिनट मे समाप्त। दिहलूराय डाक्टर नहीं है—पर जितने मनुष्यों को उनसे लाभ पहुँचता है, उनकी सख्या का अनुमान करना कठिन है। वह सहानुभूति की मूर्ति है। उन्हें देखते ही रोगी का आधा रोग दूर हो जाता। उनकी औषधियाँ ऐसी सुगम और साधारण होती है कि विना पैसा-कौड़ी मनों बटोर लाइए। तीन ही दिन मे माधवी चलने-फिरने लगी। वस्तुतः उस वैद्य की औषधि मे चमत्कार है।

यहाँ इन दिनों मुगलिये ऊधम मचा रहे हैं। ये लोग जाड़े मे कपड़े उधार दे देते है और चैत मे दाम वसूल करते है। उस समय कोई बहाना नही सुनते। गाली गलौज, मार-पीट सभी बातों पर उतर आते हैं। दो-तीन मनुष्यों को बहुत मारा। राधा ने भी कुछ कपड़े लिये थे। उसके द्वार पर जाकर सब-के सब गालियाँ देने लगे। तुलसा ने भीतर से किवाड़ बन्द कर दिये। जब इस प्रकार बस न चला, तो एक मोहनी गाय को खूँटे से खोलकर खींचते हुए ले चला। इतने में राधा दूर से आता दिखायी दिया। आते ही-आते उसने लाठी का वह हाथ मारा कि एक मुगलिये की कलाई लटक पड़ी। तब तो मुगलिये कुपित हुए, पैंतरे बद-

लने लगे। राधा भी जान पर खेल गया और तीन दुष्टों को बेकाम कर दिया। इतने मे काशी भर ने आकर एक मुगलिये की खबर ली। दिह-लूराय को मुगलियों से चिढ़ है। साभिमान कहा करते हैं कि मैने इनके इतने रुपये डुबा दिये, इतनों को पिटवा दिया कि जिसका हिसाब नहीं। यह कोलाहल सुनते ही वे भी पहुँच गये। फिर तो सैकड़ों मनुष्य लाठियाँ ले लेकर दौड पड़े। उन्होंने मुगलियों की भली-भाँति सेवा की। आशा है कि इधर आने का अब उन्हें साहस न होगा।

अब तो मई का मास भी बीत गता। क्या अभी छुट्टी नहीं हुई? रात दिन तुम्हारे आने की प्रतीक्षा है। नगर में बीमारी कम हो गयी है। हम लोग बहुत शीघ्र यहाँ से चले जायँगे। शोक! तुम इस गाँव की सैर न कर सकोगे।

तुम्हारी,
विरजन'

[१८]

प्रतापचन्द्र और कमलाचरण

प्रतापचन्द्र को प्रयाग कालेज में पढ़ते तीन साल हो चुके थे। इतने काल में उसने अपने सहपाठियों और गुरुजनों की दृष्टि मे विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। कालेज के जीवन का कोई ऐसा अंग न था जहाँ उसकी प्रतिभा न प्रदर्शित हुई हो। प्रोफेसर उस पर अभिमान करते और छात्र-गण उसे अपना नेता समझते हैं। जिस प्रकार क्रीड़ा-क्षेत्र में उसका हस्त-लाघव प्रशसनीय था, उसी प्रकार व्याख्यान-भवन में उसकी योग्यता और सूक्ष्म दर्शिता प्रमाणित थी। कालेज से सम्बद्ध एक मित्र-सभा स्थापित की गई थी। नगर के साधारण सभ्य जन, कालेज के प्रोफेसर और छात्रगण सब उसके सभासद थे। प्रताप इस सभा का उज्ज्वल चन्द्र था। यहाँ देशिक और सामाजिक विषयों पर विचार हुआ करते थे। प्रताप की

वक्तृताएँ ऐसी ओजस्विनी और तर्क-पूर्ण होती थीं कि प्रोफेसरों को भी उसके विचार और विषयान्वेषण पर आश्चर्य होता था। उसकी वक्तृता और उसके खेल दोनों ही प्रभाव-पूर्ण होते थे। जिस समय वह अपने साधारण वस्त्र पहिने हुए प्लेटफॉर्म पर जाता, उस समय सभास्थित लोगों की आँखें उसकी ओर एकटक देखने लगतीं और चित्त में उत्सुकता और उत्साह की तरगें उठने लगतीं। उसका वाक्चातुर्य, उसके संकेत, उसका मृदुल उच्चारण, उसके अङ्गोपाङ्ग की गति, सभी ऐसे प्रभाव-पूरित होते थे मानो शारदा स्वय उसकी सहायता करती है। जब तक वह प्लैटफॉर्म पर रहता सभासदों पर एक मोहिनी-सी छायी रहती, उसका एक-एक वाक्य हृदय में भिद जाता और मुख से सहसा "वाह वाह !" के शब्द निकल जाते। इसी विचार से उसकी वक्तृताएँ प्रायः अन्त मे हुआ करती थीं, क्योंकि बहुधा श्रोतागण इसी की वाक्तीक्ष्णता का आस्वादन करने के लिए आया करते थे। उसके शब्दों और उच्चारणों में स्वाभाविक प्रभाव था। साहित्य और इतिहास उसके अन्वेषण और अध्ययन के विशेष विषय थे। जातियो की उन्नति और अवनति तथा उसके कारण और गति पर वह प्रायः विचार किया करता था। इस समय उसके इस परिश्रम और उद्योग के प्रेरक तथा वर्द्धक विशेष कर श्रोताओ के साधुवाद ही होते थे ओर उन्हीं को वह अपने कठिन परिश्रम का पुरस्कार समझता था। हॉ उसके उत्साह की यह गति देखकर यह अनुमान किया जा सकता था कि वह होनहार बिरवा आगे चलकर कैसे फल-फूल लायेगा और कैसे रंग-रूप निकालेगा। अभीतक उसने एक क्षण-भर के लिये भी इस पर ध्यान नहीं दिया था कि मेरे आगामी जीवन का क्या स्वरूप होगा। कभी सोचता कि प्रोफेसर हो जाऊँगा और खूब पुस्तकें लिखूँगा। कभी वकील बनने की भावना करता। कभी सोचता, यदि छात्रवृत्ति प्राप्त होगी तो सिविल सर्विस का उद्योग करूँगा किसी एक ओर मन नहीं टिकता था।

परन्तु प्रतापचन्द्र उन विद्यार्थियों में से न था, जिनका सारा उद्योग

वक्तृता और पुस्तकों ही तक परिमित रहता है। उसके समय और योग्यता का एक छोटा भाग जनता के लाभार्थ भी व्यय होता था। उसने प्रकृति से उदार और दयालु हृदय पाया था और सर्वसाधारण में मिलने-जुलने और काम करने की योग्यता उसे पिता से मिली थी। इन्हीं कार्यों में उसका सदुत्साह पूर्ण रीति से प्रमाणित होता था। बहुधा सन्ध्या-समय वह कीटगज और कटरा की दुर्गन्धिपूर्ण गलियों में घूमता हुआ दिखायी देता, जहाँ विशेषकर नीची जाति के लोग बसते हैं। जिन लोगों की परछाई से उच्च वर्ण का हिन्दू भागता है, उनके साथ प्रताप टूटी खाट पर बैठकर घटों बातें करता और यही कारण था कि इन महल्लों के निवासी उस पर प्राण देते थे। प्रमाद और शारीरिक सुख-प्रलोभ ये दो अवगुण प्रतापचन्द्र में नाम-मात्र को भी न थे। कोई अनाथ मनुष्य हो, प्रताप उसकी सहायता के लिए तैयार था। कितनी रातें उसने झोपडा में कराहते हुए रोगियों के सिरहाने खड़े रहकर काटी थीं। इसी अभिप्राय से उसने जनता के लाभार्थ एक सभा भी स्थापित कर रखी थी और ढाई वर्ष के स्वल्प समय में ही इस सभा ने जनता की सेवा में इतनी सफलता प्राप्त की थी कि प्रयाग-वासियों को उससे प्रेम हो गया था।

कमलाचरण जिस समय प्रयाग पहुँचा, प्रतापचन्द्र ने उसका बड़ा आदर किया। समय ने उसके चित्त के द्वेष की ज्वाला शांति कर दी थी। जिस समय वह विरजन की बीमारी का समाचार पाकर बनारस पहुँचा था और उससे भेंट होते ही विरजन की दशा सुधर चली थी, उसी समय से प्रतापचन्द्र को विश्वास हो गया था कि कमलाचरण ने उसके हृदय में वह स्थान नहीं पाया है, जो मेरे लिए सुरक्षित है। यह विचार द्वेषाग्नि को शांति करने के लिए काफी था। इसके अतिरिक्त उसे प्राय. यह विचार भी उद्विग्न किया करता था कि मैं ही सुशीला का प्राणघातक हूँ। मेरी ही कठोर वाणियों ने उस बेचारी का प्राण घात किया और उसी समय से जब कि सुशीला ने मरते समय रो रोकर उससे अपने अपराधों की क्षमा

माँगी थी, प्रताप ने मन में ठान लिया कि अवसर मिलेगा तो मै इस पाप का प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। कमलाचरण के आदर-सत्कार तथा शिक्षा सुधार मे उसे किसी अंश मे प्रायश्चित को पूर्ण करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। वह उससे इस प्रकार व्यवहार रखता, जैसे छोटा भाई बड़े भाई के साथ। अपने समय का कुछ भाग उसकी सहायता करने में व्यय करता और ऐसी सुगमता से शिक्षक का कर्त्तव्य पालन करता कि शिक्षा एक रोचक कथा का रूप धारण कर लेती।

परन्तु प्रतापचन्द्र के इन प्रयत्नों के होते हुए भी कमलाचरण का जी यहाँ बहुत घबराता। सारे छात्रावास में उसके स्वभावानुकूल एक मनुष्य भी न था, जिससे वह अपने मन का दुःख कहता। वह प्रताप से निस्सङ्कोच रहते हुए भी चित्त की बहुत-सी बातें न कहता था। जब निर्जनता से जी अधिक घबराता तो विरजन को कोसने लगता कि मेरे सिर पर यह सब आपत्तियाँ उसी की लायी हुई हैं। उसे मुझसे प्रेम नहीं। मुख और लेखन का प्रम भी कोई प्रेम है ? मै चाहे उस पर प्राण ही क्यों न धारूँ, पर उसका प्रेम वाणी और लेखनी से बाहर न निकलेगा। ऐसी मूर्ति के आगे, जो पसीजना जानती ही नहीं, सिर पटकने से क्या लाभ। इन विचारों ने यहाँ तक जोर पकड़ा कि उसने विरजन को पत्र लिखना भी त्याग दिया। वह बेचारी अपने पत्रो में कलेजा निकालकर रख देती, पर कमला उत्तर तक न देता। यदि देता भी तो रूखा और हृदय-विदारक। इस समय विरजन की एक एक बात, उसकी एक-एक चाल उसके प्रेम की शिथिलता का परिचय देती हुई प्रतीत होती थी। हाँ, यदि विस्मरण हो गयी थी तो विरजन की स्नेहमयो बातें, वे मतवाली आँखें जो वियोग के समय डबडबा गयी थीं और वे कोमल हाथ जिन्होंने उससे विनती की थी कि पत्र बराबर भेजते रहना। यदि ये उसे स्मरण हो आते, तो सम्भव था कि उसे कुछ सन्तोष होता। परन्तु ऐसे अवसरों पर मनुष्य की स्मरणशक्ति धोखा दे दिया करती है।

निदान, कमलाचरण ने अपने मन-बहलाव का एक ढग सोच ही निकाला। जिस समय से उसे कुछ ज्ञान हुआ, तभी से उसे सौन्दर्य-वाटिका में रमण करने की चाट पड़ी थी, सौन्दर्योपासना उसका स्वभाव हो गयी थी। यह उसके लिए ऐसी ही अनिवार्य थी, जैसे शरीर रक्षा के लिए भोजन। बोर्डिङ्ग-हाउस से मिली हुई एक सेठ की वाटिका थी और उसकी देख भाल के लिए एक माली नौकर था। उस माली के सरयूदेवी नाम की एक कुँवारी लड़की थी। यद्यपि वह परम सुन्दरी न थी, तथापि कमला सौन्दर्य का इतना इच्छुक न था, जितना किसी विनोद की सामग्री का। कोई भी स्त्री, जिसके शरीर पर यौवन की झलक हो, उसका मन बहलाने के लिए समुचित थी। कमला इस लड़की पर डोरे डालने लगा। सन्ध्या समय निरन्तर वाटिका की पटरियों पर टहलता हुआ दिखायी देता। और लड़के तो मैदान म कसरत करते, पर कमलाचरण वाटिका में आकर ताक झाँक किया करता। धीरे-धीरे सरयूदेवी से परिचय हो गया। वह उससे गजरे मोल लेता और चौगुना मूल्य देता। माली को त्योहार के समय सबसे अधिक त्योहारी कमलाचरण ही से मिलती। यहाँ तक कि सरयूदेवी उसके प्रीतिरूपी जाल का आखेट हो गयी और दो एक बार अन्धकार के पर्दे मे परस्पर सयोग भी हो गया।

एक दिन सन्ध्या का समय था, सब विद्यार्थी सैर को गये हुए थे, कमला अकेला वाटिका में टहलता था और रह रहकर माली के झोपड़े की ओर झाँकता था। अचानक झोपड़े मे से सरयूदेवी ने उसे सकेत द्वारा बुलाया। कमला बड़ी शीघ्रता से भीतर घुस गया। आज सरयूदेवी ने मलमल की साड़ी पहनी थी, जो कमलाबाबू का उपहार थी। सिर में सुगन्धित तेल डाला था, जो कमलाबाबू बनारस से लाये थे और एक छींट का सलूका पहने हुई थी, जो बाबू साहब ने उसके लिए बनवा दिया था। आज वह अपनी दृष्टि में परम सुन्दरी प्रतीत होती थी, नहीं तो कमला-जैसा धनी मनुष्य उस पर क्यों प्राण देता? कमला खटाले पर बैठा हुआ

सरयूदेवी के हाव-भाव को मतवाली दृष्टि से देख रहा था। उसे उस समय सरयूदेवी वृजरानी से किसी प्रकार कम सुन्दरी नहीं दीख पड़ती थी। वर्ण में तनिक सा अन्तर था, पर यह ऐसा कोई बड़ा अन्तर नहीं। उसे सरयूदेवी का प्रेम सच्चा और उत्साहपूर्ण जान पड़ता था, क्योंकि वह जब कभी बनारस जाने की चर्चा करता, तो सरयूदेवी फूट-फूटकर रोने लगती और कहती कि मुझे भी लेते चलना। मैं तुम्हारा संग न छोड़ूँगी। कहाँ यह प्रेम की तीव्रता व उत्साह का बाहुल्य और कहाँ विरजन की उदासीन सेवा और निर्दयता-पूर्ण अभ्यर्थना!

कमला अभी भली-भाँति आँखों को सेंकने भी न पाया था कि अकस्मात् माली ने आकर द्वार खटखटाया। अब काटो तो शरीर में रुधिर नहीं। चेहरे का रंग उड़ गया। सरयूदेवी से गिड़गिड़ा कर बोला—'मैं कहाँ जाऊँ?' सरयूदेवी का ज्ञान आप ही शून्य हो गया था, घबराहट में मुख से शब्द तक न निकला। इतने मे माली ने फिर किवाड़ खटखटाया। बेचारी सरयूदेवी विवश थी। उसने डरते-डरते किवाड खोल दिया। कमलाचरण एक कोने मे श्वास रोककर खड़ा हो गया।

जिस प्रकार बलिदान का बकरा कटार के तले तड़पता है, उसी प्रकार कोने मे खड़े हुए कमला का कलेजा धड़क रहा था। वह अपने जीवन से निराश था और ईश्वर को सच्चे हृदय से स्मरण कर रहा था और कह रहा था कि इस बार इस आपत्ति से मुक्त हो जाऊँगा तो फिर कभी ऐसा काम न करूँगा।

इतने में माली की दृष्टि उस पर पड़ी; पहिले तो घबराया, फिर निकट आकर बोला—'यह कौन खड़ा है? यह कौन है?'

इतना सुनना था कि कमलाचरण झपटकर बाहर निकला और फाटक की ओर जी तोड़कर भागा। माली एक डंडा हाथ में लिए 'लेना-लेना, भागने न पाये!' कहता हुआ पीछे पीछे दौड़ा। यह वही कमला है जो माली को पुरस्कार व पारितोषिक दिया करता था, जिसे माली सरकार और

हुजूर कहकर बातें करता था। वही कमला आज उसी माली के सम्मुख इस प्रकार जान लेकर भाग जाता है। पाप अग्नि का वह कुण्ड है जो आदर और मान, साहस और धैर्य को क्षण-भर में जलाकर भस्म कर देता है।

कमलाचरण वृक्षों और लताओं की ओट में दौड़ता हुआ फाटक से बाहर निकला। सड़कपर ताँगा जा रहा था, उस पर जा बैठा और हाँफते-हाँफते अशक्त होकर गाड़ी के पटरे पर गिर पड़ा। यद्यपि माली ने फाटक तक भी पीछा न किया था, तथापि कमला प्रत्येक आने जानेवाले पर चौंक-चौंककर दृष्टि डालता था, मानों सारा ससार उसका शत्रु हो गया है। दुर्भाग्य ने एक और गुल खिलाया। स्टेशन पर पहुँचते ही घबराहट का मारा गाड़ी में जाकर बैठ तो गया, परन्तु उसे टिकट लेने की सुधि ही न रही और न उसे यह खबर थी कि मैं किधर जा रहा हूँ। वह इस समय इस नगर से भागना चाहता था, चाहे कहीं हो। कुछ दूर चला था कि एक अंग्रेज अफसर लालटेन लिये आता दिखायी दिया। उसके सग एक सिपाही भी था। वह यात्रियों का टिकट देखता चला आता था, परन्तु कमला ने जाना कि कोई पुलिस का अफसर है। भय के मारे हाथ-पाँव सनसनाने लगे, कलेजा धड़कने लगा। जब तक अंग्रेज दूसरी गाड़ियों में जाँच करता रहा, तब तक तो वह कलेजा कड़ा किये किसी प्रकार बैठा रहा, परन्तु ज्योंही उसके कमरे का फाटक खुला, कमला के हाथ पाँव फूल गये, नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया, उतावलेपन से दूसरी ओर का किवाड़ खोलकर चलती हुई रेलगाड़ी पर से नीचे कूद पड़ा। सिपाही और रेलवाले साहब ने उसे इस प्रकार कूदते देखा तो समझा कि कोई अभ्यस्त डाकू है, मारे हर्ष के फूले न समाये कि पारितोषिक अलग मिलेगा और वेतनोन्नति अलग होगी, झट लाल बत्ती दिखायी। तनिक देर में गाड़ी रुक गयी। अब गार्ड, सिपाही और टिकटवाले साहब कुछ अन्य मनुष्यों के सहित गाड़ी से उतर पड़े और लालटेन ले लेकर इधर-उधर देखने लगे। किसी ने कहा—'अब उसकी धूल भी न मिलेगी, पक्का डकैत था।' कोइ बोला—'इन लोगों को कालीज

का इष्ट रहता है, जो कुछ न कर दिखायें, थोड़ा है।' परन्तु गार्ड आगे ही बढ़ता गया। वेतन-वृद्धि की आशा उसे आगे ही लिये जाती थी। यहाँ तक कि वह उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ कमला गाड़ी से कूदा था। इतने में सिपाही ने खड्डे की ओर संकेत करके कहा—'देखो, वह श्वेत रंग की क्या वस्तु है? मुझे तो कोई मनुष्य-सा प्रतीत होता है।' और लोगों ने देखा और विश्वास हो गया कि अवश्य ही दुष्ट डाकू यहाँ छिपा हुआ है, चलकर उसको घेर लो ताकि कहीं निकलने न पावे, तनिक सावधान रहना। डाकू प्राण पर खेल जाते हैं। गार्ड साहब ने पिस्तौल सँभाली, मियाँ सिपाही ने लाठी तानी। कई यात्रियों ने जूते उतारकर हाथ मे लिये कि कहीं आक्रमण कर बैठा तो भागने मे सुभीता होगा। दो मनुष्यों ने ढेले उठा लिये कि दूर ही से लक्ष्य करेंगे। डाकू के निकट कौन जाय, किसे जी भारी है? परन्तु जब लोगों ने समीप जाकर देखा तो न डाकू था, न था डाकू का भाई; किन्तु एक सभ्य-स्वरूप, सुन्दर वर्ण, छरहरे शरीर का नवयुवक पृथ्वी पर औंधे मुख पड़ा है और उसके नाक और कान से धीरे धीरे रुधिर बह रहा है।

कमला ने इधर साँस तोड़ी और विरजन एक भयानक स्वप्न देखकर चौंक पड़ी। सरयूदेवी ने विरजन का सोहाग लूट लिया।

---

[१६]

दुःख दशा

सौभाग्यवती स्त्री के लिए उसका पति संसार की सबसे प्यारी वस्तु होती है। वह उसी के लिए जीती है और उसी के लिए मरती है। उसका हँसना-बोलना उसी के प्रसन्न करने के लिए और उसका बनाव-शृंगार उसी को लुभाने के लिए होता है। उसका सोहाग उसका जीवन है और सोहाग का उठ जाना उसके जीवन का अन्त है।

कमलाचरण की अकाल मृत्यु वृजरानी के लिए मृत्यु से कम न थी। उसके जीवन की आशाएँ और उमंगें सब मिट्टी में मिल गयीं। क्या क्या अभिलाषाएँ थीं और क्या हो गया ? प्रति-क्षण मृत कमलाचरण का चित्र उसके नेत्रों में भ्रमण करता रहता। यदि थोड़ी देर के लिए उसकी आँखें झपक जातीं, तो उसका स्वरूप साक्षात् नेत्रों के सम्मुख आ जाता।

किसी किसी समय में भौतिक त्रय तापों को किसी विशेष व्यक्ति या कुटुम्ब से प्रेम-सा हो जाता है। कमला का शोक शान्त भी न हुआ था कि बाबू श्यामाचरण की बारी आयी। शाखा भेदन से वृक्ष को मुरझाता हुआ न देखकर इस बार दुर्दैव ने मूल ही काट डाला। रामदीन पाँडे बड़ा दंभी मनुष्य था। जब तक डिप्टी साहब मझगाँव में थे, दबका बैठा रहा, परन्तु ज्योंही वे नगर को लौटे, उसी दिन से उसने उत्पात करना आरम्भ किया। सारा गाँव का गाँव उसका शत्रु था। जिस दृष्टि से मझ-गाँववालों ने होली के दिन उसे देखा, वह दृष्टि उसके हृदय मे काँटे की भाँति खटक रही थी। जिस मण्डल में मझगाँव स्थित था, उसके थानेदार साहब एक बड़े घाघ और कुशल रिश्वती थे। सहस्रों की रकम पचा जायँ, पर डकार तक न लें। अभियोग बनाने और प्रमाण गढ़ने मे ऐसे अभ्यस्त थे कि बाट चलते मनुष्य को फाँस लें और वह फिर किसी के छुड़ाये न छूटे। अधिकारीवर्ग उनके हथकण्डों से विज्ञ था, पर उनकी चतुराई और कार्यदक्षता के आगे किसी का कुछ बस न चलता था। रामदीन इन थानेदार साहब से मिला और अपने हृद्रोग की औषधि माँगी। इसके एक सप्ताह पश्चात् मझगाँव मे डाका पड़ गया। एक महाजन नगर से आ रहा था। रात को नम्बरदार के यहाँ ठहरा। डाकुओं ने उसे लौटकर घर न जाने दिया। प्रातःकाल थानेदार साहब तहकीकात करने आये और एक ही रस्सी में सारे गाँव को बाँधकर ले गये।

दैवात् मुकदमा बाबू श्यामाचरण की इजलास मे पेश हुआ। उन्हें पहिले ही से सारा कच्चा चिट्ठा विदित था और ये थानेदार साहब बहुत

दिनों से उनकी आँखों पर चढ़े हुए थे। उन्होंने ऐसी बाल की खाल निकाली कि थानेदार साहब की पोल खुल गयी। छः मास तक अभियोग चला और धूम से चला। सरकारी वकीलों ने बड़े-बड़े उपाय किये परन्तु घर के भेदी से क्या छिप सकता था? फल यह हुआ कि डिप्टी साहब ने सब अभियुक्तों को बेदाग छोड़ दिया और उसी दिन सायकाल को थानेदार साहब मुअत्तल कर दिये गये।

जब डिप्टी साहब फैसला सुनाकर लौटे, तो एक हितचिन्तक कर्मचारी ने कहा—'हुजूर, थानेदार साहब ने सावधान रहियेगा। आज बहुत झल्लाया हुआ था। पहिले भी दो-तीन अफसरों को धोखा दे चुका है। आप पर अवश्य वार करेगा।' डिप्टी साहब ने सुना और मुसकुराकर उस मनुष्य को धन्यवाद दिया; परन्तु अपनी रक्षा के लिए कोई विशेष यत्न न किया। उन्हें इसमे अपनी भीरुता जान पड़ती थी। राधा अहीर बड़ा अनुरोध करता रहा कि मै आपके संग रहूँगा, काशी भर भी बहुत पीछे पड़ा रहा; परन्तु उन्होंने किसी को संग न रखा। पहिले ही की तरह अपना काम करते रहे।

जालिम खाँ बात का धनी था; वह जीवन से हाथ धोकर बाबू श्यामाचरण के पीछे पड़ गया। एक दिन वे सैर करके शिवपुर से कुछ रात गये लौट रहे थे कि पागलखाने के निकट कुछ देखकर फिटिन का घोड़ा बिदका। गाड़ी रुक गयी और पल-भर में जालिम खाँ ने एक वृक्ष की आड़ से पिस्तौल चलायी। पड़ाके का शब्द हुआ और बाबू श्यामाचरण के वक्षस्थल से गोली पार हो गयी। पागलखाने के सिपाही दौड़े। जालिम खाँ पकड़ लिया गया, साईस ने उसे भागने न दिया था।

इस दुर्घटना ने कुटुम्ब का सत्यानाश कर दिया। प्रेमवती यद्यपि बड़ी सुशीला और हँसमुख स्त्री थी तथापि इन दुर्घटनाओं ने उसके स्वभाव और व्यवहार मे अकस्मात् बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया। बात बात पर विरजन से चिढ़ जाती और कटूक्तियों से उसे जलाती। उसे यह भ्रम हो

कमल ... नागिनी
उसके जी ... निकृष्ट
अभिलाष ... तुम्हारे
उसके नेत्र ... चरण
झपक जा ... रह जाती।
किसी ... यह
कुटुम्ब से ... आँसू तत्र
कि बाबू ... और व्यग्र
हुआ न
बड़ा दंभ ... कि वह तनिक
रहा, पर ... कैसे-कैसे
आरम्भ ... प्रेम
गाँववाले ... पत्तियों को
की भाँति ... प्रमुदित
दार सा ... आलाप में
जायँ, प
अभ्यस्त
छुड़ाये
चतुराई
रामदीन
माँगी।
जन न
उसे ले
करने
पहिले

विरजन खड़ी हो गयी और रोती हुई बोली—माता! जिसे नारायण ने कुचला, उसे आप क्या कुचलती है।

निदान प्रेमवती का चित्त वहाँ से ऐसा उचाट हुआ कि एक मास के भीतर सब सामान औने पौने वेचकर मझगाँव चली गयी। वृजरानी को संग न लिया। उसका मुख देखने से उसे घृणा हो गयी थी। विरजन इस विस्तृत भवन मे अकेली रह गयी। माधवी के अतिरिक्त अब उसका कोई हितैषी न रहा। सुवामा को अपनी मुँह बोली बेटी की विपत्तियों का ऐसा ही शोक हुआ, जितना अपनी बेटी का होता। कई दिन तक रोती रही और कई दिन बराबर उसे समझाने के लिए आती रहं। जब विरजन अकेली रह गयी तो सुवामा ने चाहा कि यह मेरे यहाँ उठ आये और सुख से रहे। स्वय कई बार बुलाने गयी, पर विरजन किसी प्रकार जाने को राज़ी न हुई। वह सोचती थी कि ससुर को संसार से सिधारे अभी तीन मास भी नहीं हुए, इतनी जल्दी यह घर सूना हो जायगा, तो लोग कहेंगे कि उनके मरते ही सास और बहू लड़ मरीं। यहाँ तक कि उसके इस हठ से सुवामा का मन मोटा हो गया।

मझगाँव मे प्रेमवती ने एक अन्धेर मचा रखी थी। असामियों को कटु वचन कहती। कारिन्दा के सिर पर जूती पटक दी। पटवारी को कोसा। राधा अहीर की गाय बलात्कार छीन ली। यहाँ तक कि गाँववाले घबरा गये। उन्होंने बाबू राधाचरण से शिकायत की। राधाचरण ने यह समाचार सुना तो विश्वास हो गया कि अवश्य इन दुर्घटनाओं ने अम्माँ की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इस समय किसी प्रकार इनका मन बहलाना चाहिए। सेवती को लिखा कि तुम माताजी के पास चली जाओ और उनके संग कुछ दिन रहो। सेवती की गोद मे उन दिनों एक चाँद-सा बालक खेल रहा था और प्राणनाथ दो मास की छुट्टी लेकर दरभंगा से आये थे। राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे ऐसे अवसर पर सेवती कैसे आ सकती थी? तैयारियाँ करते-करते महीनों गुजर गये। कभी

गया था कि ये सब आपत्तियाँ इसी बहू की लायी हुई हैं। यही अभागिनी जबसे घर में आयी, घर का सत्यानाश हो गया। इसका पौरा बहुत निकृष्ट है। कई बार उसने खोलकर विरजन से कह भी दिया कि—तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। म क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ हैं!' विरजन ये बातें सुनती और कलेजा थामकर रह जाती। जब दिन ही बुरे आ गये, तो भली बातें क्योंकर सुनने में आयें यह आठों पहर का ताप उसे दुःख के आँसू भी न बहाने देता। आँसू तब निकलते हैं जब कोई हितैषी हो और दु.ख को सुने। बाने और व्यग्य की अग्नि से आँसू जल जाते हैं।

एक दिन विरजन का चित्त बैठे बैठे घर में ऐसा घबराया कि वह तनिक देर के लिए वाटिका में चली आयी। आह! इस वाटिका में कैसे-कैसे आनन्द के दिन बीते थे! इसका एक-एक पौधा मरनेवाले के असीम प्रेम का स्मारक था। कभी वे दिन भी थे कि इन फूलों और पत्तियों को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता था और सुरभित वायु चित्त को प्रमुदित कर देती था। यही वह स्थल है, जहाँ अनेक सन्ध्याएँ प्रेमालाप में व्यतीत हुई थीं। उस समय पुष्पों की कलियाँ अपने कोमल अधरों से उसका स्वागत करती थीं। पर शोक! आज उनके मस्तक झुके हुए और अधर बन्द थे! क्या यह वह स्थान न था जहाँ 'अलबेली मालिन' फूलों के हार गूँथती थी? पर भोली मालिन को क्या मालूम था कि इसी स्थान पर उसे अपने नेत्रों से निकले हुए मोतियों के हार गूँथने पड़ेंगे। इन्हीं विचारों में विरजन की दृष्टि उस कुञ्ज की ओर उठ गयी जहाँ से एक बार कमलाचरण मुसकराता हुआ निकला था, मानो वह पत्तियों का हिलना और उसके वस्त्रों की झलक देख रही है। उसके मुख पर उस समय मन्द-मन्द मुसकान सी प्रकट होती थी, जैसे गंगा में डूबते हुए सूर्य की पीली और मलिन किरणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अचानक प्रेमवती ने आकर कर्णकटु शब्दों में कहा— अब आपको सैर करने का शौक हुआ है!

विरजन खड़ी हो गयी और रोती हुई बोली—माता ! जिसे नारायण ने कुचला, उसे आप क्या कुचलती हैं।

निदान प्रेमवती का चित्त वहाँ से ऐसा उचाट हुआ कि एक मास के भीतर सब सामान औने पौने बेचकर मझगाँव चली गयी। बृजरानी को संग न लिया। उसका मुख देखने से उसे घृणा हो गयी थी। विरजन इस विस्तृत भवन मे अकेली रह गयी। माधवी के अतिरिक्त अब उसका कोई हितैषी न रहा। सुवामा को अपनी मुँह बोली बेटी की विपत्तियों का ऐसा ही शोक हुआ, जितना अपनी बेटी का होता। कई दिन तक रोती रही और कई दिन बराबर उसे समझाने के लिए आती रह। जब विरजन अकेली रह गयी तो सुवामा ने चाहा कि यह मेरे यहाँ उठ आये और सुख से रहे। स्वय कई बार बुलाने गयी, पर विरजन किसी प्रकार जाने को राज़ी न हुई। वह सोचती थी कि ससुर को संसार से सिधारे अभी तीन मास भी नहीं हुए, इतनी जल्दी यह घर सूना हो जायगा, तो लोग कहेंगे कि उनके मरते ही सास और बहू लड़ मरीं। यहाँ तक कि उसके इस हठ से सुवामा का मन मोटा हो गया।

मझगाँव में प्रेमवती ने एक अन्धेर मचा रखी थी। असामियों को कटु वचन कहती। कारिन्दा के सिर पर जूती पटक दी। पटवारी को कोसा। राधा अहीर की गाय बलात्कार छीन ली। यहाँ तक कि गाँववाले घबरा गये। उन्होंने बाबू राधाचरण से शिकायत की। राधाचरण ने यह समाचार सुना तो विश्वास हो गया कि अवश्य इन दुर्घटनाओं ने अम्माँ की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इस समय किसी प्रकार इनका मन बहलाना चाहिए। सेवती को लिखा कि तुम माताजी के पास चली जाओ और उनके संग कुछ दिन रहो। सेवती की गोद मे उन दिनों एक चाँद-सा बालक खेल रहा था और प्राणनाथ दो मास की छुट्टी लेकर दरभंगा से आये थे। राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे ऐसे अवसर पर सेवती कैसे आ सकती थी ? तैयारियाँ करते-करते महीनों गुजर गये। कभी

गया था कि ये सब आपत्तियाँ इसी बहू की लायी हुई हैं। यही अभागिनी जबसे घर में आयी, घर का सत्यानाश हो गया। इसका पौरा बहुत निकृष्ट है। कई बार उसने खोलकर विरजन से कह भी दिया कि—तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। म क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ हैं!' विरजन ये बातें सुनती और कलेजा थामकर रह जाती। जब दिन ही बुरे आ गये, तो भली बातें क्योंकर सुनने में आयें यह आठों पहर का ताप उसे दुःख के आँसू भी न बहाने देता। आँसू तब निकलते हैं जब कोई हितैषी हो और दु.ख को सुने। ताने और व्यंग्य की अग्नि से आँसू जल जाते हैं।

एक दिन विरजन का चित्त बैठे बैठे घर में ऐसा घबराया कि वह तनिक देर के लिए वाटिका में चली आयी। आह! इस वाटिका में कैसे-कैसे आनन्द के दिन बीते थे! इसका एक एक पौधा मरनेवाले के असीम प्रेम का स्मारक था। कभी वे दिन भी थे कि इन फूलों और पत्तियों को देखकर चित्त प्रफुल्लित होता था और सुरभित वायु चित्त को प्रमुदित कर देती था। यही वह स्थल है, जहाँ अनेक सन्ध्याएँ प्रेमालाप में व्यतीत हुई थीं। उस समय पुष्पों की कलियाँ अपने कोमल अधरों से उसका स्वागत करती थीं। पर शोक! आज उनके मस्तक झुके हुए और अधर बन्द थे! क्या यह वह स्थान न था जहाँ 'अलबेली मालिन' फूलों के हार गूँथती थी? पर भोली मालिन को क्या मालूम था कि इसी स्थान पर उसे अपने नेत्रों से निकले हुए मोतियों के हार गूँथने पड़ेंगे। इन्हीं विचारों में विरजन की दृष्टि उस कुञ्ज की ओर उठ गयी जहाँ से एक बार कमलाचरण मुसकराता हुआ निकला था, मानो वह पत्तियों का हिलना और उसके वस्त्रों की झलक देख रही है। उसके मुख पर उस समय मन्द-मन्द मुसकान सी प्रकट होती थी, जैसे गंगा में डूबते हुए सूर्य की पीली और मलिन किरणों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अचानक प्रेमवती ने आकर कर्णकटु शब्दों में कहा— अब आपको सैर करने का शौक हुआ है!

विरजन खड़ी हो गयी और रोती हुई बोली—माता! जिसे नारायण ने कुचला, उसे आप क्या कुचलती है!

निदान प्रेमवती का चित्त वहाँ से ऐसा उचाट हुआ कि एक मास के भीतर सब सामान औने पौने बेचकर मझगाँव चली गयी। वृजरानी को संग न लिया। उसका मुख देखने से उसे घृणा हो गयी थी। विरजन इस विस्तृत भवन मे अकेली रह गयी। माधवी के अतिरिक्त अब उसका कोई हितैपी न रहा। सुवामा को अपनी मुँह बोली बेटी की विपत्तियों का ऐसा ही शोक हुआ, जितना अपनी बेटी का होता। कई दिन तक रोती रही और कई दिन बराबर उसे समझाने के लिए आती रह। जब विरजन अकेली रह गयी तो सुवामा ने चाहा कि यह मेरे यहाँ उठ आये और सुख से रहे। स्वय कई बार बुलाने गयी, पर विरजन किसी प्रकार जाने को राज़ी न हुई। वह सोचती थी कि ससुर को संसार से सिधारे अभी तीन मास भी नहीं हुए, इतनी जल्दी यह घर सूना हो जायगा, तो लोग कहेंगे कि उनके मरते ही सास और बहू लड़ मरीं। यहाँ तक कि उसके इस हठ से सुवामा का मन मोटा हो गया।

मझगाँव में प्रेमवती ने एक अन्धेर मचा रखी थी। असामियों को कटु वचन कहती। कारिन्दा के सिर पर जूती पटक दी। पटवारी को कोसा। राधा अहीर की गाय बलात्कार छीन ली। यहाँ तक कि गाँववाले घबरा गये। उन्होंने बाबू राधाचरण से शिकायत की। राधाचरण ने यह समाचार सुना तो विश्वास हो गया कि अवश्य इन दुर्घटनाओं ने अम्माँ की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इस समय किसी प्रकार इनका मन बहलाना चाहिए। सेवती को लिखा कि तुम माताजी के पास चली जाओ और उनके संग कुछ दिन रहो। सेवती की गोद मे उन दिनों एक चाँद सा बालक खेल रहा था और प्राणनाथ दो मास की छुट्टी लेकर दरभंगा से आये थे। राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये थे ऐसे अवसर पर सेवती कैसे आ सकती थी? तैयारियाँ करते-करते महीनों गुजर गये। कभी

बच्चा बीमार पड़ गया, कभी सास रुष्ट हो गयी, कभी साइत न बनी। निदान छठे महीने उसे अवकाश मिला। वह भी बड़ी विनतियों से।

परन्तु प्रेमवती पर उसके आने का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह उसके गले मिलकर रोयी भी नहीं। उसके बच्चे की ओर आँख उठाकर भी न देखा। उसके हृदय में अब ममता और प्रेम नाम मात्र को भी न रह गया था। जैसे ईख से रस निकाल लेने पर केवल सीठी रह जाती है, उसी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय से प्रेम निकल गया, वह अस्थि-चर्म का एक ढेर रह जाता है। देवी-देवता का नाम मुख पर आते ही उसके तेवर बदल जाते थे। मझगाँव में जन्माष्टमी हुई। लोगों ने ठाकुरजी का व्रत रखा और चन्दा से नाच कराने की तैयारियाँ करने लगे। परन्तु प्रेमवती ने ठीक जन्म के अवसर पर अपने घर की मूर्ति खेत में फिकवा दी। एकादशी व्रत टूटा, देवताओं की पूजा छूटी। वह प्रेमवती अब प्रेमवती ही न थी।

सेवती ने ज्यों त्यो करके यहाँ दो महीने काटे। उसका चित्त बहुत घबराता। कोई सखी-सहेली भी न थी, जिसके संग बैठकर दिन काटती। विरजन ने तुलसा को अपनी सखी बना लिया था। परन्तु सेवती का स्वभाव सरल न था। ऐसी स्त्रियों से मेल जोल करने में वह अपनी मान-हानि समझती थी। तुलसा बेचारी कई बार आयी, परन्तु जब देखा कि यह मन खोलकर नहीं मिलती तो आना-जाना छोड़ दिया।

तीन मास व्यतीत हो चुके थे। एक दिन सेवती दिन चढ़े तक सोती रही। प्राणनाथ ने रात को बहुत रुलाया था। जब नींद उचटी तो क्या देखती है कि प्रेमवती उसके बच्चे को गोद में लिये चूम रही है। कभी आँखों से लगाती है कभी छाती से चिमटाती है। सामने अँगीठी पर हलुआ पक रहा है। बच्चा उसकी ओर अँगुली से संकेत कर करके उछलता है कि कटोरे में जा बैठूँ और गरम गरम हलुवा चखूँ। आज उसका मुखमण्डल कमल की भाँति खिला हुआ है। स्यात् उसकी तीव्र दृष्टि ने यह जान लिया है कि प्रेमवती के शुष्क हृदय में प्रेम ने आज फिर से

निवास किया है। सेवती को विश्वास न हुआ। वह चारपाई पर मुकुलित लोचनों से ताक रही थी मानों स्वप्न देख रही है। इतने में प्रेमवती प्यार से बोली—उठो बेटी! उठो! दिन बहुत चढ़ आया है।

सेवती के रोंगटे खड़े हो गये और आँखें भर आयीं। आज बहुत दिनों के पश्चात् माता के मुख से प्रेममय वचन सुने। झट उठ बैठी और माता के गले लिपटकर रोने लगी। प्रेमवती की आँखों से भी आँसू की झड़ी लग गयी, सूखा वृक्ष हरा हुआ। जब दोनों के आँसू थमे तो प्रेमवती बोली—सित्तो! तुम्हें आज यह सब बातें अचरज प्रतीत होती हैं, हाँ बेटी, अचरज ही है। मै कैसे रोऊँ, जब आँखों मे आँसू ही न रहे? प्यार कहाँ से लाऊँ, जब कलेजा सूखकर पत्थर हो गया? ये सब दिनों के फेर हैं। आँसू उनके साथ गये और प्यार कमला के साथ। आज-न जाने ये दो बूँद कहाँ से निकल आये? बेटी! मेरे सब अपराध क्षमा करना।

यह कहते-कहते उसकी आँखें झपकने लगीं। सेवती घबरा गयी। माता को बिस्तर पर लेटा दिया और पंखा झलने लगी। उस दिन से प्रेमवती की यह दशा हो गयी कि जब देखो रो रही है। बच्चे को एक क्षण के लिए भी पास से दूर नहीं करती। महरियों से बोलती तो मुख से फूल झड़ते। फिर वही पहिले की सुशीला प्रेमवती हो गयी। ऐसा प्रतीत होता था, मानों उसके हृदय पर से एक पर्दा सा उठ गया है। जब कड़ाके का जाड़ा पड़ता है, तो प्रायः नदियाँ बर्फ से ढक जाती हैं उसमें बसनेवाले जलचर बर्फ के पर्दे में छिप जाते हैं, नौकाएँ फँस जाती हैं और उस मंदगति, रजतवर्ण, प्राण-सजीवन जल स्रोत का स्वरूप कुछ भी दिखायी नहीं देता है। यद्यपि बर्फ की चद्दर की ओट मे वह मधुर निद्रा मे अलसित पड़ा रहता है; तथापि जब गरमी का साम्राज्य होता है, तो बर्फ पिघल जाता है और रजतवर्णा नदी अपनी बर्फ की चद्दर उठा लेती है, फिर मछलियाँ और जलजन्तु आ बसते हैं, नौकाओं के पाल लहराने लगते हैं और तट पर मनुष्यों और पक्षियों का जमघट हो जाता है।

परन्तु प्रेमवती की यह दशा बहुत दिनों तक स्थिर न रही। यह चेतनता मानों मृत्यु का सन्देशा थी। इसी चित्तोद्विग्नता ने उसे अब तक जीवन-कारावास में रखा था, अन्यथा प्रेमवती जैसी कोमल-हृदया स्त्री आपत्तियों के ऐसे झोंके कदापि न सह सकती।

सेवती ने चारों ओर तार दिलवाये कि आकर माताजी को देख जाओ पर कहीं से कोई न आया। प्राणनाथ को छुट्टी न मिली, विरजन बीमार थी, रहे राधाचरण। वह नैनीताल वायु परिवर्तन करने गये हुए थे। प्रेमवती को पुत्र ही देखने की लालसा थी, पर जब उनका पत्र आ गया कि इस समय मैं नहीं आ सकता, तो उसने एक लम्बी साँस लेकर आँखें मूँद ली, और वह ऐसी सोयी कि फिर उठना नसीब न हुआ।

---

[२०]

मन का प्राबल्य

मानव हृदय एक रहस्यमय वस्तु है। कभी तो वह लाखों की ओर आँख उठाकर नहीं देखता और कभी कौड़ियों पर फिसल पड़ता है। कभी सैकड़ों निर्दोषों की हत्या पर 'आह' तक नहीं करता और कभी एक बच्चे को देखकर रो देता है। प्रतापचन्द्र और कमलाचरण में यद्यपि सहोदर भाइयों का सा प्रेम था, तथापि कमला की आकस्मिक मृत्यु का जो शोक होना चाहिए वह न हुआ। सुनकर वह चौंक अवश्य पड़ा और थोड़ी देर के लिए उदास भी हुआ, पर वह शोक, जो किसी सच्चे मित्र की मृत्यु से होता है उसे न हुआ। निस्सन्देह वह विवाह के पूर्व ही से विरजन को अपनी समझता था तथापि इस विचार में उसे पूर्ण सफलता कभी प्राप्त न हुई। समय-समय पर उसका विचार इस पवित्र सम्बन्ध की सीमा का उल्लंघन कर जाता था। कमलाचरण से उसे स्वतः कोई प्रेम न था। उसका जो कुछ आदर, मान और प्रेम वह करता था, कुछ तो इस विचार

से कि विरजन सुनकर प्रसन्न होगी और कुछ इस विचार से कि सुशीला की मृत्यु का प्रायश्चित इसी प्रकार हो सकता है। जब विरजन ससुराल चली आयी, तो अवश्य कुछ दिनों प्रताप ने उसे अपने ध्यान में न आने दिया; परन्तु जब से वह उसकी बीमारी का समाचार पाकर बनारस गया था और उसकी भेंट ने विरजन पर संजीवनी बूटी का काम किया था, उसी दिन से प्रताप को विश्वास हो गया था कि विरजन के हृदय में कमला ने वह स्थान नहीं पाया जो मेरे लिए नियत था।

प्रताप ने विरजन को परम करुणापूर्ण शोक-पत्र लिखा। पर पत्र लिखता जाता था और सोचता जाता था कि इसका उस पर क्या प्रभाव होगा? सामान्यतः समवेदना प्रेम को प्रौढ़ करती है। क्या आश्चर्य है जो यह पत्र कुछ काम कर जाय? इसके अतिरिक्त उसकी धार्मिक प्रवृत्ति ने विकृत रूप धारण करके उसके मन में यह मिथ्या विचार उत्पन्न किया कि ईश्वर ने मेरे प्रेम की प्रतिष्ठा की और कमलाचरण को मेरे मार्ग से हटा दिया, मानो यह आकाश से आदेश मिला है कि अब मैं विरजन से अपने प्रेम का पुरस्कार लूँ। प्रताप यह तो जानता था कि विरजन से किसी ऐसी बात की आशा करना, जो सदाचार और सत्यता से बाल बराबर भी हटी हुई न हो मूर्खता है; परन्तु उसे विश्वास था कि सदाचार और सतीत्व के सीमान्तर्गत यदि मेरी कामनाएँ पूरी हो सकें, तो विरजन अधिक समय तक मेरे साथ निर्दयता नहीं कर सकती।

एक मास तक ये विचार उसे उद्विग्न करते रहे। यहाँ तक कि उसके मन में विरजन से एक बार गुप्त भेंट करने की प्रबल इच्छा भी उत्पन्न हुई। वह यह जानता था कि अभी विरजन के हृदय पर तत्कालीन घाव है और यदि मेरी किसी बात या किसी व्यवहार से मेरे मन की दुश्चेष्टा की गन्ध निकली, तो मैं विरजन की दृष्टि से हमेशा के लिए गिर जाऊँगा। परन्तु जिस प्रकार कोई चोर रुपयों की राशि देखकर धैर्य नहीं रख सकता है, उसी प्रकार प्रताप अपने मन को रोक न सका। मनुष्य का प्रारब्ध

बहुत कुछ अवसर के हाथ में रहता है। अवसर उसे भला भी मानता है और बुरा भी। जब तक कमलाचरण जीवित था, प्रताप के मन को कभी इतना सिर उठाने का साहस न हुआ था। उसकी मृत्यु ने मानो उसे यह अवसर दे दिया। यह स्वार्थपरता का मद यहाँ तक बढा कि एक दिन उसे ऐसा भास होने लगा, मानो विरजन मुझे स्मरण कर रही है। अपनी व्यग्रता से वह विरजन की व्यग्रता का अनुमान करने लगा। बनारस जाने का इरादा पक्का हो गया।

दो बजे रात्रि का समय था। भयावह सन्नाटा छाया हुआ था। निद्रा ने सारे नगर पर एक घटाटोप चादर फैला रखी थी। कभी कभी वृक्षों की सनसनाहट सुनायी दे जाती थी। धुआँ घरों और वृक्षों पर एक काली चद्दर की भाँति लिपटा हुआ था और सड़कपर लालटेनें धुएँ की कालिमा में ऐसी दृष्टिगत होती थीं जैसे बादल में छिपे हुए तारे। प्रतापचन्द्र रेल-गाड़ी पर से उतरा। उसका कलेजा बाँसों उछल रहा था और हाथ-पाँव काँप रहे थे। वह जीवन में पहिला ही अवसर था कि उसे पाप का अनुभव हुआ! शोक है कि हृदय की यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रहती। वह इस दुर्गम मार्ग को पूरा कर लेती है। जिस मनुष्य ने कभी मदिरा नहीं पी, उसे उसकी दुर्गन्ध से घृणा होती है। जब प्रथम बार पीता है, तो घण्टों उसका मुख कड़वा रहता है और वह आश्चर्य करता है कि क्यों लोग ऐसी विषैली और कडुवी वस्तुपर आसक्त हैं। पर थोड़े ही दिनों मे उसकी घृणा दूर हो जाती है और वह भी लाल रस का दास बन जाता है। पाप का स्वाद मदिरा से कहीं अधिक भयङ्कर होता है।

प्रतापचन्द्र अँधेरे मे धीरे धीरे जा रहा था। उसके पाँव वेग से नहीं उठते थे, क्योंकि पाप ने उनमे बेड़ियाँ डाल दी थीं। उस आह्लाद का, जो ऐसे अवसर पर गति को तीव्र कर देता है उसके मुख पर कोई लक्षण न था। वह चलते चलते रुक जाता और कुछ सोचकर आगे बढ़ता था। प्रेत उसे पाप के खड्डे मे कैसा खींचे लिये जाता है!

प्रताप का सिर घम घम कर रहा था और भय से उसकी पिंडलियाँ काँप रही थीं। सोचता-विचारता घण्टे-भर मे मुंशी श्यामाचरण के विशाल भवन के सामने जा पहुँचा। आज अन्धकार में यह भवन बहुत ही भयावह प्रतीत होता था, मानो पाप का पिशाच सामने खड़ा है। प्रताप दीवार की ओट मे खड़ा हो गया, मानो किसी ने उसके पाँव बाँध दिये हैं। आध घण्टे तक वह यही सोचता रहा कि लौट चलूँ या भीतर जाऊँ? यदि किसी ने देख लिया तो बड़ा ही अनर्थ होगा। विरजन मुझे देखकर मन मे क्या सोचेगी? कहीं ऐसा न हो कि मेरा यह व्यवहार मुझे सदा के लिए उसकी दृष्टि से गिरा दे। परन्तु इन सब सन्देहों पर पिशाच का आकर्षण प्रबल हुआ। इन्द्रियों के वश मे होकर मनुष्य को भले बुरे का ध्यान नहीं रह जाता। उसने चित्त को दृढ़ किया। वह इस कायरता पर अपने को धिक्कार देने लगा, तदनन्तर घर के पीछे की ओर जाकर वाटिका की चहार-दीवारी से फाँद गया। वाटिका से घर मे जाने के लिए एक छोटा सा द्वार था। दैवयोग से वह इस समय खुला हुआ था। प्रताप को यह शकुन-सा प्रतीत हुआ। परन्तु वस्तुतः यह अधर्म का द्वार था। भीतर जाते हुए प्रताप के पाँव थर्राने लगे। हृदय इस वेग से धड़कता था, मानो वह छाती से बाहर निकल पड़ेगा। उसका दम घुट रहा था। धर्म ने अपना सारा बल लगा दिया। पर मन का प्रबल वेग न रुक सका। प्रताप द्वार के भीतर प्रविष्ट हुआ और आँगन में तुलसी के चबूतरे के पास चोरों की भाँति खड़ा सोचने लगा कि विरजन से क्योंकर भेंट होगी। घर के सब किवाड़ बन्द हैं। क्या विरजन भी यहाँ से चली गयी? अचानक उसे एक बन्द दरवाजे की दरारों से रोशनी के प्रकाश की झलक दिखायी दी। दबे पाँव उसी ओर दरार में आँख लगाकर भीतर का दृश्य देखने लगा।

विरजन एक सफेद साड़ी पहिने, बाल खोले, हाथ में लेखनी लिये भूमि पर बैठी थी और दीवार की ओर देख-देखकर कागज पर कुछ

लिखती जाती थी, मानो कोई कवि विचार के समुद्र से मोती निकाल रहा है। लेखनी को दाँतों-तले दबाती, कुछ सोचती और लिखती, फिर थोड़ी देर के पश्चात् दीवार की ओर ताकने लगती। प्रताप बहुत देर तक श्वास रोके हुए यह विचित्र दृश्य देखता रहा। मन उसे बार बार ठोकर देता, पर यह धर्म का अन्तिम गढ़ था। इस बार धर्म का पराजित होना मानो हृदाम में पिशाच का स्थान पाना था। धर्म ने इस समय प्रताप को उस खड्डे में गिरने से बचा लिया, जहाँ से आमरण उसे निकलने का सौभाग्य न होता। वरन् यह कहना उचित होगा कि पाप के खड्डे से बचानेवाला इस समय धर्म न था, वरन् दुष्परिणाम और लज्जा का भय था। किसी किसी समय जब हमारे सद्भाव पराजित हो जाते हैं, तब दुष्परिणाम का भय ही हमें कर्त्तव्य च्युत होने से बचा लेता है। विरजन के पीले वदन पर एक ऐसा तेज था, जो उसके हृदय की स्वच्छता और विचार की उच्चता का परिचय दे रहा था। उसके मुखमण्डल की उज्ज्वलता और दृष्टि की पवित्रता में वह अग्नि थी, जिसने प्रताप की दुश्चेष्टाओं को क्षणमात्र मे भस्म कर दिया। उसे ज्ञान हो गया और अपने आत्मिक पतन पर ऐसी लज्जा उत्पन्न हुई कि वहीं खड़ा रोने लगा।

इन्द्रियों ने जितने निकृष्ट विकार उसके हृदय में उत्पन्न कर दिये थे, वे सब इस दृश्य ने इस प्रकार लोप कर दिये, जैसे उजाला अँधेरे को दूर कर देता है। इस समय उसे यह इच्छा हुई कि विरजन के चरणों पर गिरकर अपने अपराधों की क्षमा माँगे। जैसे किसी महात्मा सन्यासी के सम्मुख जा कर हमारे चित्त की दशा हो जाती है, उसी प्रकार प्रताप के हृदय में स्वतः प्रायश्चित्त के विचार उत्पन्न हुए। पिशाच यहाँ तक लाया, पर आगे न ले जा सका। वह उलटे पाँवों फिरा और ऐसी तीव्रता से वाटिका में आया और चहारदीवारी से कूदा, मानो कोई उसका पीछा करता है।

अरुणोदय का समय हो गया था, आकाश में तारे झलमला रहे थे

और चक्की का घुर-घुर शब्द कर्णगोचर हो रहा था। प्रताप पाँव दबाता, मनुष्यों की आँखें बचाता गङ्गाजी की ओर चला। अचानक उसने सिर पर हाथ रखा तो टोपी का पता न था और न जेब मे घड़ी ही दिखाई दी। उसका कलेजा सन्न-से हो गया। मुँह से एक हृदय वेधक आह निकल पड़ी।

कभी कभी जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाती है, जो क्षणमात्र में मनुष्य का रूप पलट देती है। कभी माता-पिता की एक तिर्छी चितवन पुत्र को सुयश के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है और कभी स्त्री की एक शिक्षा पति के ज्ञान-चक्षुओं को खोल देती है। गर्वशील पुरुष अपने सगों की दृष्टियों में अपमानित होकर ससार का भार बनना नहीं चाहते। मनुष्य-जीवन मे ऐसे अवसर ईश्वरप्रदत्त होते है। प्रतापचन्द्र के जीवन में भी वह शुभ अवसर था, जब वह संकीर्ण गलियों मे होता हुआ गङ्गा के किनारे आकर बैठा और शोक तथा लज्जा के अश्रु प्रवाहित करने लगा। मनोविकार की प्रेरणाओं ने उसकी अधोगति मे कोई कसर उठा न रखी थी परन्तु उसके लिए यह कठोर कृपालु गुरु की ताड़ना प्रमाणित हुई। क्या यह अनुभव सिद्ध नहीं है कि विष भी समयानुसार अमृत का काम करता है?

जिस प्रकार वायु का झोंका सुलगती हुई अग्नि को दहका देता है, उसी प्रकार बहुधा हृदय मे दबे हुए उत्साह को भड़काने के लिए किसी वाह्य उपयोग की आवश्यकता होती है। अपने दुःखों का अनुभव और दूसरों की आपत्ति का दृश्य बहुधा वह वैराग्य उत्पन्न करता है जो सत्सङ्ग, अध्ययन और मन की प्रवृत्ति से भी सम्भव नहीं। यद्यपि प्रतापचन्द्र के मन में उत्तम और निःस्वार्थ जीवन व्यतीत करने का विचार पूर्व ही से था, तथापि मनोविकार के धक्के ने वह काम एक ही क्षण में पूरा कर दिया, जिसके पूरा होने मे वर्षों लगते। साधारण दशाओं मे जाति-सेवा उसके जीवन का एक गौण कार्य होता, परन्तु इस चेतावनी ने सेवा को

उसके जीवन का प्रधान उद्देश्य बना दिया। सुवामा की हार्दिक अभिलाषा पूर्ण होने के सामान पैदा हो गये। क्या इन घटनाओं के अन्तर्गत कोई अज्ञात प्रेरक शक्ति थी? कौन कह सकता है?

---

[१२]

विदुषी वृजरानी

जब से मुन्शी सञ्जीवनलाल तीर्थयात्रा को निकले और प्रतापचन्द्र प्रयाग चला गया उस समय सुवामा के जीवन मे बड़ा अन्तर हो गया था। वह ठेके के कार्य को उन्नत करने लगी। मुंशी सञ्जीवनलाल के समय मे भी व्यापार मे इतनी उन्नति नहीं हुई थी। सुवामा रात रात भर बैठी ईंट-पत्थरों से माथा लड़ाया करती और गारे चूने की चिन्ता में व्याकुल रहती। पाई-पाई का हिसाब समझती और कभी-कभी स्वयं कुलियों के कार्य की देखभाल करती। इन कार्यों मे उसकी ऐसी प्रवृत्ति हुई कि दान और व्रत से भी वह पहले का सा प्रेम न रहा। प्रति दिन आय वृद्धि होने पर भी सुवामा ने व्यय किसी प्रकार का न बढ़ाया। कौड़ी-कौड़ी दाँतों से पकड़ती और यह सब इसलिए कि प्रतापचन्द्र धनवान् हो जाय और अपने जीवन-पर्यन्त सानन्द रहे।

सुवामा को अपने होनहार पुत्र पर अभिमान था। उसके जीवन की गति देखकर उसे विश्वास हो गया था कि मन में जो अभिलाषा रखकर मैंने पुत्र माँगा था, वह अवश्य पूर्ण होगी। वह कालेज के प्रिंसिपल और प्रोफेसरों से प्रताप का समाचार गुप्त रीति से लिया करती थी और उनकी सूचनाओं का अध्ययन उसके लिए एक रोचक कहानी के तुल्य था। ऐसी दशा में प्रयाग से प्रतापचन्द्र के लोप हो जाने का तार पहुँचना मानो उसके हृदय पर वज्र का गिरना था। सुवामा एक ठण्डी साँस ले, मस्तक पर हाथ रख बैठ गयी। तीसरे दिन प्रतापचन्द्र की पुस्तक, कपड़े

और अन्य सामग्रियाँ भी आ पहुँचीं। यह घाव पर नमक का छिड़काव था।

× × × ×

प्रेमवती के मरने का समाचार पाते ही प्राणनाथ पटना से और राधाचरण नैनीताल से चले। उसके जीते-जी आते तो भेंट हो जाती, मरने पर आये तो उसके शव को भी देखने का सौभाग्य न हुआ। मृतक-संस्कार बड़ी धूम से किया गया। दो सप्ताह गाँव में बड़ी धूम-धाम रही। तत्पश्चात् राधाचरण मुरादाबाद चले गये और प्राणनाथ ने पटना जाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उनकी इच्छा थी कि स्त्री को प्रयाग पहुँचाते हुए पटना जायँ। पर सेवती ने हठ किया कि जब यहाँ तक आये हैं, तो विरजन के पास भी अवश्य चलना चाहिये; नहीं तो उसे बड़ा दुःख होगा। समझेगी कि मुझे असहाय जानकर इन लोगों ने भी त्याग दिया।

सेवती का इस उचाट भवन में आना मानो पुष्पों में सुगन्ध का आना था। सप्ताह भर के लिए सुदिन का शुभागमन हो गया। विरजन बहुत बहुत प्रसन्न हुई और खूब रोयी। माधवी ने मुन्नू को अङ्क में लेकर बहुत प्यार किया। बाहर की बैठक कई मास से बन्द थी, आज उसके भी भाग्य जागे। उजड़ा हुआ घर बसा।

प्रेमवती के चले जाने पर विरजन उस गृह में अकेली रह गई थी। केवल माधवी उसके पास थी। हृदय-ताप और मानसिक दुःख ने उसका वह गुण प्रकट कर दिया, जो अब तक गुप्त था। वह काव्य और पद्य-रचना का अभ्यास करने लगी। कविता सच्ची भावनाओं का चित्र है और सच्ची भावनाएँ चाहे वे दुःख की हों या सुख की उसी समय सम्पन्न होती हैं जब हम दुःख या सुख का अनुभव करते हैं। विरजन इन दिनों रात-रात बैठी भाषा में अपने मनोभावों के मोतियों की माला गूँथा करती। उसका एक एक शब्द करुणा और वैराग्य से परिपूर्ण होता था। अन्य कवियों के मनों में मित्रों की वाह-वाह और काव्य-प्रेमियों के साधुवाद से

उत्साह पैदा होता है, पर विरजन अपनी दुःख-कथा अपने ही मन को सुनाती थी।

सेवती को आये दो-तीन दिन बीते थे। एक दिन उसने विरजन से कहा— मैं तुम्हें बहुधा किसी ध्यान में मग्न देखती हूँ और कुछ लिखते भी पाती हूँ। मुझे न बताओगी? विरजन लज्जित हो गयी। बहाना करने लगी कि कुछ नहीं, यों ही जी कुछ उदास रहता है। सेवती ने कहा— 'मैं न मानूँगी।' फिर वह विरजन का बाक्स उठा लायी, जिसमें कविता के दिव्य मोती रखे हुए थे। विवश होकर विरजन ने अपने नये पद्य सुनाने शुरू किये। मुख से प्रथम पद्य का निकलना था कि सेवती के रोएँ खड़े हो गये और जब तक सारा पद्य समाप्त न हुआ, वह तन्मय होकर सुनती रही। प्राणनाथ की संगति ने उसे काव्य का रसिक बना दिया था। बार-बार उसके नेत्र भर आते। जब विरजन चुप हो गयी तो एक समा बँधा हुआ था मानो कोई मनोहर राग अभी ही थम गया है। सेवती ने विरजन को कण्ठ से लिपटा लिया, फिर उसे छोड़कर दौड़ी हुई प्राणनाथ के पास गयी, जैसे कोई नया बच्चा नया खिलौना पाकर हर्ष से दौड़ता हुआ अपने साथियों को दिखाने जाता है। प्राणनाथ अपने अफसर को प्रार्थना पत्र लिख रहे थे कि मेरी माता अति पीड़ित हो गयीं हैं, अतएव सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया जायगा। सेवती को देखकर चट अपना प्रार्थना-पत्र छिपा लिया और मुस्कराये। मनुष्य कैसा धूर्त है! वह अपने आपको भी धोखा देने से नहीं चूकता।

सेवती—तनिक भीतर चलो, तुम्हें विरजन की कविता सुनवाऊँ, फड़क उठोगे।

प्राण०— अच्छा, अब उन्हें कविता की चाट हुई है? उनकी भाभी भी तो गाया करती थीं—तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

सेवती— तनिक चलकर सुनो, तो पीछे हँसना। मुझे तो उसकी कविता

पर आश्चर्य हो रहा है।

प्राण०—चलो, एक पत्र लिखकर अभी आता हूँ।

सेवती—अब यही मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं आके पत्र नोच डालूँगी।

सेवती प्राणनाथ को घसीटे ले आयी। वे अभी तक यही जानते थे कि विरजन ने कोई सामान्य भजन बनाया होगा। उसी को सुनाने के लिए व्याकुल हो रही होगी। पर जब भीतर आकर बैठे और विरजन ने लजाते हुए अपनी भावपूर्ण कविता 'प्रेम की मतवाली' पढ़नी आरम्भ की तो महाशय के नेत्र खुल गये। पद्य क्या था, हृदय के दुःख की एक धारा और प्रेम रहस्य की एक कथा थी। वह सुनते थे और मुग्ध होकर झूमते थे। शब्दों की एक एक योजना पर, भावों के एक एक उद्गार पर लहालोट हुए जाते थे। उन्होंने बहुतेरे कवियों के काव्य देखे थे, पर यह उच्च विचार, यह नूतनता, यह भावोत्कर्ष कहीं दीख न पड़ा था। वह समय चित्रित हो रहा था जब अरुणोदय के पूर्व मलयानिल लहराता हुआ चलता है, कलियाँ विकसित होती हैं, फूल महकते हैं और आकाश पर हलकी लालिमा छा जाती है। एक-एक शब्द में नवविकसित पुष्पों की शोभा और हिमकणों की शीतलता विद्यमान थी। उस पर विरजन का सुरीलापन और ध्वनि की मधुरता सोने में सुगन्ध थी। ये वे छन्द थे, जिन पर विरजन ने हृदय को दीपक की भाँति जलाया था। प्राणनाथ प्रहसन के उद्देश्य से आये थे। पर जब वे उठे हैं तो वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता था, मानो छाती से हृदय निकल गया है। एक दिन उन्होंने विरजन से कहा—यदि तुम्हारी कविताएँ छपें, तो उनका बहुत आदर हो।

विरजन ने सिर नीचा करके कहा—मुझे विश्वास नहीं कि कोई इनको पसन्द करेगा।'

प्राणनाथ—ऐसा संभव ही नहीं, यदि हृदयों मे कुछ भी रसिकता है तो तुम्हारे काव्य की अवश्य प्रतिष्ठा होगी यदि ऐसे लोग विद्यमान हैं, जो

उत्साह पैदा होता है, पर विरजन अपनी दुःख-कथा अपने ही मन को सुनाती थी।

सेवती को आये दो-तीन दिन बीते थे। एक दिन उसने विरजन से कहा— मै तुम्हें बहुधा किसी ध्यान मे मग्न देखती हूँ और कुछ लिखते भी पाती हूँ। मुझे न बताओगी? विरजन लज्जित हो गयी। बहाना करने लगी कि कुछ नहीं, यों ही जी कुछ उदास रहता है। सेवती ने कहा— 'मैं न मानूँगी।' फिर वह विरजन का बाक्स उठा लायी, जिसमें कविता के दिव्य मोती रखे हुए थे। विवश होकर विरजन ने अपने नये पद्य सुनाने शुरू किये। मुख से प्रथम पद्य का निकलना था कि सेवती के रोएँ खड़े हो गये और जब तक सारा पद्य समाप्त न हुआ, वह तन्मय होकर सुनती रही। प्राणनाथ की सगति ने उसे काव्य का रसिक बना दिया था। बार-बार उसके नेत्र भर आते। जब विरजन चुप हो गयी तो एक समा बँधा हुआ था मानो कोई मनोहर राग अभी ही थम गया है। सेवती ने विर-जन को कण्ठ से लिपटा लिया, फिर उसे छोड़कर दौड़ी हुई प्राणनाथ के पास गयी, जैसे कोई नया बच्चा नया खिलौना पाकर हर्ष से दौड़ता हुआ अपने साथियों को दिखाने जाता है। प्राणनाथ अपने अफसर को प्रार्थना पत्र लिख रहे थे कि मेरी माता अति पीड़ित हो गयीं हैं, अतएव सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया जायगा। सेवती को देखकर चट अपना प्रार्थना-पत्र छिपा लिया और मुस्कराये। मनुष्य कैसा धूर्त है! यह अपने आपको भी धोखा देने से नहीं चूकता।

सेवती—तनिक भीतर चलो, तुम्हें विरजन की कविता सुनवाऊँ, फड़क उठोगे।

प्राण०— अच्छा, अब उन्हें कविता की चाट हुई है? उनकी भाभी भी तो गाया करती थीं—तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

सेवती— तनिक चलकर सुनो, तो पीछे हँसना। मुझे तो उसकी कविता

पर आश्चर्य हो रहा है।

प्राण०—चलो, एक पत्र लिखकर अभी आता हूँ।

सेवती—अब यही मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं आके पत्र नोच डालूँगी।

सेवती प्राणनाथ को घसीटे ले आयी। वे अभी तक यही जानते थे कि विरजन ने कोई सामान्य भजन बनाया होगा। उसी को सुनाने के लिए व्याकुल हो रही होगी। पर जब भीतर आकर बैठे और विरजन ने लजाते हुए अपनी भावपूर्ण कविता 'प्रेम की मतवाली' पढ़नी आरम्भ की तो महाशय के नेत्र खुल गये। पद्य क्या था, हृदय के दुःख की एक धारा और प्रेम रहस्य की एक कथा थी। वह सुनते थे और मुग्ध होकर झूमते थे। शब्दों की एक एक योजना पर, भावों के एक एक उद्गार पर लहालोट हुए जाते थे। उन्होंने बहुतेरे कवियों के काव्य देखे थे, पर यह उच्च विचार, यह नूतनता, यह भावोत्कर्ष कहीं दीख न पड़ा था। वह समय चित्रित हो रहा था जब अरुणोदय के पूर्व मलयानिल लहराता हुआ चलता है, कलियाँ विकसित होती हैं, फूल महकते हैं और आकाश पर हलकी लालिमा छा जाती है। एक-एक शब्द में नवविकसित पुष्पों की शोभा और हिम-कणों की शीतलता विद्यमान थी। उस पर विरजन का सुरीलापन और ध्वनि की मधुरता सोने में सुगन्ध थी। ये वे छन्द थे, जिन पर विरजन ने हृदय को दीपक की भाँति जलाया था। प्राणनाथ प्रहसन के उद्देश्य से आये थे। पर जब वे उठे हैं तो वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता था, मानो छाती से हृदय निकल गया है। एक दिन उन्होंने विरजन से कहा—यदि तुम्हारी कविताएँ छपें, तो उनका बहुत आदर हो।

विरजन ने सिर नीचा करके कहा—मुझे विश्वास नहीं कि कोई इनको पसन्द करेगा।'

प्राणनाथ—ऐसा संभव ही नहीं, यदि हृदयों में कुछ भी रसिकता है तो तुम्हारे काव्य की अवश्य प्रतिष्ठा होगी यदि ऐसे लोग विद्यमान हैं, जो

उत्साह पैदा होता है, पर विरजन अपनी दुःख-कथा अपने ही मन को सुनाती थी।

सेवती को आये दो-तीन दिन बीते थे। एक दिन उसने विरजन से कहा— मैं तुम्हें बहुधा किसी ध्यान में मग्न देखती हूँ और कुछ लिखते भी पाती हूँ। मुझे न बताओगी? विरजन लज्जित हो गयी। बहाना करने लगी कि कुछ नहीं, यों ही जी कुछ उदास रहता है। सेवती ने कहा— 'मैं न मानूँगी।' फिर वह विरजन का बाक्स उठा लायी, जिसमें कविता के दिव्य मोती रखे हुए थे। विवश होकर विरजन ने अपने नये पद्य सुनाने शुरू किये। मुख से प्रथम पद्य का निकलना था कि सेवती के रोएँ खड़े हो गये और जब तक सारा पद्य समाप्त न हुआ, वह तन्मय होकर सुनती रही। प्राणनाथ की संगति ने उसे काव्य का रसिक बना दिया था। बार-बार उसके नेत्र भर आते। जब विरजन चुप हो गयी तो एक समा बँधा हुआ था मानो कोई मनोहर राग अभी ही थम गया है। सेवती ने विरजन को कण्ठ से लिपटा लिया, फिर उसे छोड़कर दौड़ी हुई प्राणनाथ के पास गयी, जैसे कोई नया बच्चा नया खिलौना पाकर हर्ष से दौड़ता हुआ अपने साथियों को दिखाने जाता है। प्राणनाथ अपने अफसर को प्रार्थना पत्र लिख रहे थे कि मेरी माता अति पीड़ित हो गयीं हैं, अतएव सेवा में प्रस्तुत होने में विलम्ब हुआ। आशा करता हूँ कि एक सप्ताह का आकस्मिक अवकाश प्रदान किया जायगा। सेवती को देखकर चट अपना प्रार्थना-पत्र छिपा लिया और मुस्कराये। मनुष्य कैसा धूर्त है! वह अपने आपको भी धोखा देने से नहीं चूकता।

सेवती—तनिक भीतर चलो, तुम्हें विरजन की कविता सुनवाऊँ, फड़क उठोगे।

प्राण०— अच्छा, अब उन्हें कविता की चाट हुई है? उनकी भाभी भी तो गाया करती थीं—तुम तो श्याम बड़े बेखबर हो।

सेवती— तनिक चलकर सुनो, तो पीछे हँसना। मुझे तो उसकी कविता

नाथ ने पहिले कभी कोई लेख न लिखा था, परन्तु श्रद्धा ने अभ्यास की कमी पूरी कर दी थी। लेख अत्यन्त रोचक, समालोचनात्मक और भावपूर्ण था।

इस लेख का मुद्रित होना था कि विरजन को चारों तरफ से प्रतिष्ठा के उपहार मिलने लगे। राधाचरण मुरादाबाद से उसकी भेंट को आये। कमला, उमादेवी, चन्द्रकुँअर और कितनी ही पुरानी सखियाँ जिन्होंने उसे विस्मरण कर दिया था प्रति दिन विरजन के दर्शनों को आने लगीं। बड़े-बड़े गण्य मान्य सज्जन जो ममता के अभिमान से हाकिमों के सम्मुख भी सिर न झुकाते वे विरजन के द्वार पर दर्शन को आते थे। चन्द्रा स्वयं तो न आ सकी, परन्तु पत्र में लिखा—जी चाहता है कि तुम्हारे चरणों पर सिर रखकर घंटों रोऊँ।

---

[२२]

माधवी

कभी कभी वन के फूलों में वह सुगन्धि और रङ्ग रूप मिल जाता है, जो सजी हुई वाटिकाओं को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। माधवी थी तो एक मूर्ख और दरिद्र मनुष्य की लड़की, परन्तु विधाता ने उसे नारियों के सभी उत्तम गुणों से सुशोभित कर दिया था। उसमें शिक्षा तथा सुधार के ग्रहण करने की विशेष योग्यता थी। माधवी और विरजन का मिलाप उस समय हुआ जब विरजन ससुराल आयी। इस भोली-भाली कन्या ने उसी समय से विरजन के संग असाधारण प्रीति प्रगट करनी आरम्भ की। ज्ञात नहीं, वह उसे देवी समझती थी या क्या! परन्तु कभी उसने विरजन के विरुद्ध एक शब्द भी मुख से न निकाला। विरजन भी उसे अपने संग सुलाती, खिलाती और अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र पहिनाती। इससे अधिक प्रीति वह अपनी छोटी भगिनी से भी नहीं कर सकती थी। चित्त का चित्त

पुष्पों की सुगन्ध से आनन्दित हो जाते हैं, जो पक्षियों के कलरव और चाँदनी की मनोहारिणी छटा का आनन्द उठा सकते हैं, तो वे तुम्हारी कविता को अवश्य हृदय में स्थान देंगे। विरजन के हृदय में वह गुद-गुदी उत्पन्न हुई जो प्रत्येक कवि को अपने काव्यचिन्तन की प्रशंसा मिलने पर और कविता के मुद्रित होने के विचार से होती है। यद्यपि वह 'नहीं-नहीं' करती रही, पर वह 'नहीं' 'हाँ' के समान थी। प्रयाग से उन दिनों 'कमला' नाम की अच्छी पत्रिका निकलती थी? प्राणनाथ ने 'प्रेम की मतवाली' को वहाँ भेज दिया। सम्पादक एक काव्य-रसिक महानुभाव थे। कविता पर हार्दिक धन्यवाद दिया और जब यह कविता प्रकाशित हुई, तो साहित्य संसार में धूम मच गयी। कदाचित् ही किसी कवि को प्रथम ही बार ऐसी ख्याति मिली हो। लोग पढ़ते और विस्मय से एक दूसरे का मुँह ताकते थे। काव्य-प्रेमियों में कई सप्ताह तक मतवाली बाला के चर्चे रहे। किसी को विश्वास ही न आता था कि यह एक नवजात कवि की रचना है।

अब प्रति मास कमला के पृष्ठ विरजन की कविता से सुशोभित होने लगे। और 'भारत महिला' को लोकमत ने कवियों के सम्मानित पद पर पहुँचा दिया। 'भारत महिला' का नाम बच्चे बच्चे की जिह्वा पर चढ़ गया। कोई समाचार-पत्र या पत्रिका ऐसी न थी जो 'भारत-महिला' की रचनाओं की इच्छुक न हो। पत्र खोलते ही पाठकों क नेत्र 'भारत महिला' को ढूँढने लगते। हाँ, उसकी दिव्य शक्तियाँ अब किसी को विस्मय में न डालतीं। उसने स्वयं कविता का आदर्श उच्च कर दिया था।

तीन वर्ष तक किसी को कुछ भी पता न लगा कि 'भारत महिला' कौन है? निदान प्राणनाथ से न रहा गया। उन्हें विरजन पर भक्ति हो गयी थी। वे कई मास से उसका जीवन-चरित्र लिखने की धुन में थे। सेवती के द्वारा धीरे-धीरे उन्होंने उसका सब जीवन-चरित्र ज्ञात कर लिया और 'भारत-महिला' के शीर्षक से एक प्रभाव-पूरित लेख लिखा। प्राण-

नाथ ने पहिले कभी कोई लेख न लिखा था, परन्तु श्रद्धा ने अभ्यास की कमी पूरी कर दी थी। लेख अत्यन्त रोचक, समालोचनात्मक और भावपूर्ण था।

इस लेख का मुद्रित होना था कि विरजन को चारों तरफ से प्रतिष्ठा के उपहार मिलने लगे। राधाचरण मुरादाबाद से उसकी भेंट को आये। कमला, उमादेवी, चन्द्रकुँअर और कितनी ही पुरानी सखियाँ जिन्होंने उसे विस्मरण कर दिया था प्रति दिन विरजन के दर्शनों को आने लगीं। बड़े-बड़े गण्य मान्य सज्जन जो ममता के अभिमान से हाकिमों के सम्मुख भी सिर न झुकाते वे विरजन के द्वार पर दर्शन को आते थे। चन्द्रा स्वयं तो न आ सकी, परन्तु पत्र में लिखा—जी चाहता है कि तुम्हारे चरणों पर सिर रखकर घंटों रोऊँ।

———

[२२]

माधवी

कभी कभी वन के फूलों में वह सुगन्धि और रङ्ग रूप मिल जाता है, जो सजी हुई वाटिकाओं को कभी प्राप्त नहीं हो सकता। माधवी थी तो एक मूर्ख और दरिद्र मनुष्य की लड़की, परन्तु विधाता ने उसे नारियों के सभी उत्तम गुणों से सुशोभित कर दिया था। उसमें शिक्षा तथा सुधार के ग्रहण करने की विशेष योग्यता थी। माधवी और विरजन का मिलाप उस समय हुआ जब विरजन ससुराल आयी। इस भोली-भाली कन्या ने उसी समय से विरजन के संग असाधारण प्रीति प्रगट करनी आरम्भ की। ज्ञात नहीं, वह उसे देवी समझती थी या क्या ? परन्तु कभी उसने विरजन के विरुद्ध एक शब्द भी मुख से न निकाला। विरजन भी उसे अपने संग सुलाती, खिलाती और अच्छे-अच्छे रेशमी वस्त्र पहिनाती। इससे अधिक प्रीति वह अपनी छोटी भगिनी से भी नहीं कर सकती थी। चित्त का चित्त

से सम्बन्ध होता है। यदि प्रताप को वृजरानी से हार्दिक सम्बन्ध था तो वृजरानी भी प्रताप के प्रेम में पगी हुई थी। जब कमलाचरण से उसके विवाह की बात पक्की हुई तो वह प्रतापचन्द्र से कम दुखी न हुई। हाँ, लज्जावश उसके हृदय के भाव कभी प्रकट न होते थे। विवाह हो जाने के पश्चात् उसे नित्य यह चिन्ता रहती थी कि प्रतापचन्द्र के पीड़ित हृदय को कैसे तसल्ली दूँ? मेरा जीवन तो इस भाँति आनन्द से बीतता है। बेचारे प्रताप के ऊपर न जाने कैसी बीतती होगी! माधवी उन दिनों ग्यारहवें वर्ष में थी। उसके रंग रूप की सुन्दरता, स्वभाव और गुण देख-देखकर आश्चर्य होता था। विरजन को अचानक यह ध्यान आया कि क्या मेरी माधवी इस योग्य नहीं कि प्रताप उसे अपने कण्ठ का हार बनायें? उस दिन से वह माधवी के सुधार और प्यार में और भी अधिक प्रवृत हो गयी। वह सोच सोचकर मन ही-मन फूली न समाती कि जब माधवी सोलह-सत्रह वर्ष की हो जायगी, तब मैं प्रताप के पास जाऊँगी और उससे हाथ जोड़कर कहूँगी कि माधवी मेरी बहिन है। उसे आज से तुम अपनी चेरी समझो। क्या प्रताप मेरी बात टाल देंगे? नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते। आनन्द तो तब है जब कि चची स्वयं माधवी को अपनी बहू बनाने की मुझसे इच्छा करें। इसी विचार से विरजन ने प्रतापचन्द्र के प्रशसनीय गुणों का चित्र माधवी के हृदय में खींचना आरम्भ कर दिया था, जिससे कि उसका रोम-रोम प्रताप के प्रेम में पग जाय। वह जब प्रतापचन्द्र का वर्णन करने लगती तो स्वतः उसके शब्द असामान्य रीति से मधुर और सरस हो जाते। शनैः-शनैः माधवी का कोमल हृदय प्रेम-रस का आस्वादन करने लगा। 'दर्पण में बाल पड़ गया।'

भोली माधवी सोचने लगी, मैं कैसी भाग्यवती हूँ। मुझे ऐसे स्वामी मिलेंगे जिनके चरण धोने के योग्य भी मैं नहीं हूँ, परन्तु क्या वे मुझे अपनी चेरी बनायेंगे? कुछ हो मैं अवश्य उनकी दासी बनूँगी और यदि प्रेम में कुछ आकर्षण है, तो मैं उन्हें अवश्य अपना बना लूँगी। परन्तु

उस बेचारी को क्या मालूम था कि ये आशाएँ शोक बनकर नेत्रों के मार्ग से बह जायेंगी ? उसका पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा भी न हुआ था कि विरजन पर गृह-विनाश की आपत्तियाँ आ पड़ीं। उस आँधी के झोके ने माधवी की इस कल्पित पुष्प वाटिका का सत्यानाश कर दिया। इसी बीच में प्रताप-चन्द्र के लोप होने का समाचार मिला। आँधी ने जो कुछ अवशिष्ट रखा था, वह भी इस अग्नि ने जलाकर भस्म कर दिया।

परन्तु मानस कोई वस्तु है, तो माधवी प्रतापचन्द्र की स्त्री बन चुकी। उसने अपना तन और मन उन्हें समर्पण कर दिया। प्रताप को ज्ञान नहीं। परन्तु उन्हें ऐसी अमूल्य वस्तु मिली है, जिसके बराबर संसार में कोई वस्तु नहीं तुल सकती। माधवी ने केवल एक बार प्रताप को देखा था और केवल एक ही बार उनके अमृत-वचन सुने थे। मगर इसने उस चित्र को और भी उज्ज्वल कर दिया था, जो उ के हृदय पर पहले ही विरजन ने खींच रखा था। प्रताप का पता नहीं है, मर माधवी उसकी प्रेमाग्नि में दिन-प्रति-दिन घुलती जाती है। उस दिन से कोई ऐसा व्रत नहीं था, जो माधवी न रखती हो; कोई ऐसा देवता नहीं था, जिसकी वह पूजा न करती हो और यह सब इसलिए कि ईश्वर प्रताप को जहाँ कहीं वे हों कुशल से रखे। इन प्रेम कल्पनाओं ने उस बालिका को और भी अधिक दृढ़, सुशील और कोमल बना दिया, स्यात् उसके चित्त ने यह निर्णय कर लिया था कि मेरा विवाह प्रतापचन्द्र से हो चुका। विरजन उसकी यह दशा देखती और रोती कि यह आग मेरी ही लगाई हुई है। यह नवकुसुम किसके कण्ठ का हार बनेगा ? यह किसकी होकर रहेगी ? हाय ! जिस बीज को मैंने इतने परिश्रम से अंकुरित किया और मधुक्षीर से सींचा, उसका फूल इस प्रकार शाखा पर ही कुम्हलाया जाता है। विरजन तो भला कविता करने में उलझी रहती, किन्तु माधवी को यह सन्तोष भी न था। उसका प्रेमी और साथी उसके प्रियतम का ध्यान मात्र था—उस प्रियतम का जो उसके लिए सर्वथा अपरिचित था। प्रताप के चले जाने के कई मास पीछे

एक दिन माधवी ने स्वप्न देखा कि वे संन्यासी हो गये हैं। आज माधवी का अपार प्रेम प्रकट हुआ है। आकाशवाणी-सी हो गयी कि प्रताप ने अवश्य संयास ले लिया। आज से वह भी तपस्विनी बन गयी। उसने अपने सुख और विलास की लालसा हृदय से निकाल दी।

जब कभी बैठे-बैठे माधवी का जी बहुत आकुल होता, तो वह प्रतापचन्द्र के घर चली जाती। वहाँ उसके चित्त को थोड़ी देर के लिए शाति मिल जाती थी। यह भवन माधवी के लिए एक पवित्र मन्दिर था। जब तक विरजन और सुवामा के हृदयों में ग्रन्थि पड़ी हुई थी, वह यहाँ बहुत कम आती थी। परन्तु जब अन्त में विरजन के पवित्र और आदर्श जीवन ने यह गाँठ खोल दी और वे गगा-यमुना की भाँति परस्पर गले मिल गयीं, तो माधवी का आवागमन भी बढ गया। सुवामा के पास दिन-दिन भर बैठी रह जाती। इस भवन की एक एक अगुल पृथ्वी प्रताप का स्मारक थी। इसी आँगन में प्रताप ने काठ के घोड़े दौड़ाये थे और इसी कुण्ड में कागज़ की नावें चलायी थीं। नौकाएँ तो स्यात् काल के भँवर में पड़कर डूब गयीं, परन्तु घोड़ा अब भी विद्यमान था। माधवी ने उसकी जर्जरित अस्थियों में प्राण डाल दिया और उसे वाटिका में कुण्ड के किनारे एक पाटलवृक्ष की छाया में बाँध दिया। यही भवन प्रतापचन्द्र का शयनागार था। माधवी अब उसे अपने देवता का मन्दिर समझती है। इसी पलॅग ने प्रताप को बहुत दिनों तक अपने अक में थपक थपककर सुलाया था। माधवी अब उसे पुष्पों से सुसज्जित करती है। माधवी ने इस कमरे को ऐसा सुसज्जित कर दिया, जैसा वह कभी न था। चित्रों के मुख पर से धूल की यवनिका उठ गयी। लैम्प का भाग्य पुनः चमक उठा। माधवी की इस अनन्त प्रेम-भक्ति से सुवामा का दुःख भी दूर हो गया। चिर काल से उसके मुख पर प्रतापचन्द्र का नाम कभी न आया था। विरजन से मेल-मिलाप भी हो गया, परन्तु दोनों स्त्रियों में कभी प्रतापचन्द्र की चर्चा भी न होती थी। विरजन लज्जा से सकुचित थी और सुवामा क्रोध से। किंतु

माधवी के प्रेमानल से पत्थर भी पिघल गया। जब वह प्रेमविह्वल होकर प्रताप के बालपन की बातें पूछने लगती तो सुवामा से न रहा जाता। उसकी आँखों में जल भर आता। तब दोनों-की-दोनों रोतीं और दिन-दिन भर प्रताप की बातें समाप्त न होतीं। क्या अब माधवी के चित्त की दशा सुवामा से छिप सकती थी? वह बहुधा सोचती कि क्या यह तपस्विनी इसी प्रकार प्रेमाग्नि में जलती रहेगी और वह भी बिना किसी आशा के? एक दिन वृजरानी ने 'कमला' का पैकेट खोला, तो पहले ही पृष्ट पर एक परम प्रतिभा-पूर्ण चित्र, विविध रङ्गों में दिखायी पड़ा। यह किसी महात्मा का चित्र था। उसे ध्यान आया कि मैंने इन महात्मा को कहीं अवश्य देखा है। सोचते-सोचते अकस्मात् उसका ध्यान प्रतापचन्द्र तक जा पहुँचा। आनन्द के उमंग में उछल पड़ी और बोली—माधवी, तनिक यहाँ आना।

माधवी फूलों की क्यारियाँ सींच रही थी। उसके चित्त-विनोद का आजकल यही कार्य था। वह साड़ी पानी में लथपथ, सिर के बाल बिखरे माथे पर पसीने के बिन्दु और नेत्रों में प्रेम का रस भरे हुए आकर खड़ी हो गयी। विरजन ने कहा—आ, तुझे एक चित्र दिखाऊँ।

माधवी ने कहा—किसका चित्र है, देखूँ?

माधवी ने चित्र को ध्यानपूर्वक देखा। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

विरजन—पहचान गयी?

माधवी—क्यों? यह स्वरूप तो कई बार स्वप्न में देख चुकी हूँ! बदन से कान्ति बरस रही है।

विरजन—देखो, वृत्तान्त भी लिखा है।

माधवी ने दूसरा पन्ना उलटा तो 'स्वामी बालाजी' शीर्षक लेख मिला।

थोड़ी देर तक दोनों तन्मय होकर यह लेख पढ़ती रहीं, तब बात-चीत होने लगी।

एक दिन माधवी ने स्वप्न देखा कि वे संन्यासी हो गये हैं। आज माधवी का अपार प्रेम प्रकट हुआ है। आकाशवाणी-सी हो गयी कि प्रताप ने अवश्य संयास ले लिया। आज से वह भी तपस्विनी बन गयी। उसने अपने सुख और विलास की लालसा हृदय से निकाल दी।

जब कभी बैठे बैठे माधवी का जी बहुत आकुल होता, तो वह प्रतापचन्द्र के घर चली जाती। वहाँ उसके चित्त को थोड़ी देर के लिए शांति मिल जाती थी। यह भवन माधवी के लिए एक पवित्र मन्दिर था। जब तक विरजन और सुवामा के हृदयों में ग्रन्थि पड़ी हुई थी, वह यहाँ बहुत कम आती थी। परन्तु जब अन्त में विरजन के पवित्र और आदर्श जीवन ने यह गाँठ खोल दी और वे गंगा-यमुना की भाँति परस्पर गले मिल गयीं, तो माधवी का आवागमन भी बढ़ गया। सुवामा के पास दिन-दिन भर बैठी रह जाती। इस भवन की एक एक अंगुल पृथ्वी प्रताप का स्मारक थी। इसी आँगन में प्रताप ने काठ के घोड़े दौड़ाये थे और इसी कुण्ड में कागज़ की नावें चलायी थीं। नौकाएँ तो स्यात् काल के भँवर में पड़कर डूब गयीं, परन्तु घोड़ा अब भी विद्यमान था। माधवी ने उसकी जर्जरित अस्थियों में प्राण डाल दिया और उसे वाटिका में कुण्ड के किनारे एक पाटलवृक्ष की छाया में बाँध दिया। यही भवन प्रतापचन्द्र का शयनागार था। माधवी अब उसे अपने देवता का मन्दिर समझती है। इसी पलंग ने प्रताप को बहुत दिनों तक अपने अंक में थपक थपककर सुलाया था। माधवी अब उसे पुष्पों से सुसज्जित करती है। माधवी ने इस कमरे को ऐसा सुसज्जित कर दिया, जैसा वह कभी न था। चित्रों के मुख पर से धूल की यवनिका उठ गयी। लैम्प का भाग्य पुनः चमक उठा। माधवी की इस अनन्त प्रेम-भक्ति से सुवामा का दुःख भी दूर हो गया। चिर काल से उसके मुख पर प्रतापचन्द्र का नाम कभी न आया था। विरजन से मेल-मिलाप भी हो गया, परन्तु दोनों स्त्रियों में कभी प्रतापचन्द्र की चर्चा भी न होती थी। विरजन लज्जा से संकुचित थी और सुवामा क्रोध से। किंतु

माधवी के प्रेमानल से पत्थर भी पिघल गया। जब वह प्रेमविह्वल होकर प्रताप के बालपन की बातें पूछने लगती तो सुवामा से न रहा जाता। उसकी आँखों में जल भर आता। तब दोनों-की-दोनों रोतीं और दिन-दिन भर प्रताप की बातें समाप्त न होतीं। क्या अब माधवी के चित्त की दशा सुवामा से छिप सकती थी? वह बहुधा सोचती कि क्या यह तपस्विनी इसी प्रकार प्रेमाग्नि मे जलती रहेगी और वह भी बिना किसी आशा के? एक दिन वृजरानी ने 'कमला का पैकेट खोला, तो पहले ही पृष्ट पर एक परम प्रतिमा-पूर्ण चित्र, विविध रङ्गों में दिखायी पड़ा। यह किसी महात्मा का चित्र था। उसे ध्यान आया कि मैंने इन महात्मा को कहीं अवश्य देखा है। सोचते-सोचते अकस्मात् उसका ध्यान प्रतापचन्द्र तक जा पहुँचा। आनन्द के उमंग में उछल पड़ी और बोली—माधवी, तनिक यहाँ आना।

माधवी फूलों की क्यारियाँ सींच रही थी। उसके चित्त-विनोद का आजकल यही कार्य था। वह साड़ी पानी में लथपथ, सिर के बाल बिखरे माथे पर पसीने के बिन्दु और नेत्रों में प्रेम का रस भरे हुए आकर खड़ी हो गयी। विरजन ने कहा—आ, तुझे एक चित्र दिखाऊँ।

माधवी ने कहा—किसका चित्र है, देखूँ?

माधवी ने चित्र को ध्यानपूर्वक देखा। उसकी आँखों मे आँसू आ गये।

विरजन—पहचान गयी?

माधवी—क्यों? यह स्वरूप तो कई बार स्वप्न में देख चुकी हूँ! वदन से कान्ति बरस रही है।

विरजन—देखो, वृत्तान्त भी लिखा है।

माधवी ने दूसरा पन्ना उलटा तो 'स्वामी बालाजी' शीर्षक लेख मिला।

थोड़ी देर तक दोनों तन्मय होकर यह लेख पढ़ती रहीं, तब बात-चीत होने लगी।

एक दिन माधवी ने स्वप्न देखा कि वे संन्यासी हो गये हैं। आज माधवी का अपार प्रेम प्रकट हुआ है। आकाशवाणी-सी हो गयी कि प्रताप ने अवश्य संयास ले लिया। आज से वह भी तपस्विनी बन गयी। उसने अपने सुख और विलास की लालसा हृदय से निकाल दी।

जब कभी बैठे बैठे माधवी का जी बहुत आकुल होता, तो वह प्रतापचन्द्र के घर चली जाती। वहाँ उसके चित्त को थोड़ी देर के लिए शांति मिल जाती थी। यह भवन माधवी के लिए एक पवित्र मन्दिर था। जब तक विरजन और सुवामा के हृदयों में ग्रन्थि पड़ी हुई थी, वह यहाँ बहुत कम आती थी। परन्तु जब अन्त में विरजन के पवित्र और आदर्श जीवन ने यह गाँठ खोल दी और वे गंगा-यमुना की भाँति परस्पर गले मिल गयीं, तो माधवी का आवागमन भी बढ़ गया। सुवामा के पास दिन-दिन भर बैठी रह जाती। इस भवन की एक एक अंगुल पृथ्वी प्रताप का स्मारक थी। इसी आँगन में प्रताप ने काठ के घोड़े दौड़ाये थे और इसी कुण्ड में कागज़ की नावें चलायी थीं। नौकाएँ तो स्यात् काल के भँवर में पड़कर डूब गयीं, परन्तु घोड़ा अब भी विद्यमान था। माधवी ने उसकी जर्जरित अस्थियों में प्राण डाल दिया और उसे वाटिका में कुण्ड के किनारे एक पाटलवृक्ष की छाया में बाँध दिया। यही भवन प्रतापचन्द्र का शयनागार था। माधवी अब उसे अपने देवता का मन्दिर समझती है। इसी पलँग ने प्रताप को बहुत दिनों तक अपने अंक में थपक थपककर सुलाया था। माधवी अब उसे पुष्पों से सुसज्जित करती है। माधवी ने इस कमरे को ऐसा सुसज्जित कर दिया, जैसा वह कभी न था। चित्रों के मुख पर से धूल की यवनिका उठ गयी। लैम्प का भाग्य पुनः चमक उठा। माधवी की इस अनन्त प्रेम-भक्ति से सुवामा का दु:ख भी दूर हो गया। चिर काल से उसके मुख पर प्रतापचन्द्र का नाम कभो न आया था। विरजन से मेल-मिलाप भी हो गया, परन्तु दोनों स्त्रियों में कभी प्रतापचन्द्र की चर्चा भी न होती थी। विरजन लज्जा से सकुचित थी और सुवामा क्रोध से। किंतु

दोनों स्त्रियाँ घर से वाहर निकलीं। विरजन का मुखकमलमुर झाया हुआ था, पर माधवी का अग अंग हर्ष से खिला जाता था। कोई उससे पूछे - 'तेरे चरण अब पृथ्वी पर क्यो नहीं पड़ते ? तेरे पीले वदन पर क्यों प्रसन्नता की लाली झलक रही है ? तुझे कौन-सी सम्पत्ति मिल गयी ? तू अब शोकान्वित और उदास क्यो नहीं दिखायी पड़ती ? तुझे अपने प्रियतम से मिलने की अब कोई आशा नहीं, तुझ पर प्रेम की दृष्टि कभी नहीं पहुँची, फिर तू क्यों फूली नहीं समाती ?' इसका उत्तर माधवी क्या देगी ? कुछ नहीं। वह सिर झुका लेगी, उसकी आँखें नीचे झुक जायँगी, जैसे डालियाँ फूलों के भार से झुक जाती है। कदाचित् उनसे कुछ अश्रु-विन्दु भी टपक पड़ें; किन्तु उसकी जिह्वा से एक शब्द भी न निकलेगा।

माधवी प्रेम के मद से मतवाली है। उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त है। उसका प्रेम हाट का सोदा नहीं। उसका प्रेम किसी वस्तु का भूखा नहीं है। वह प्रेम के बदले प्रेम नहीं चाहती। उसे अभिमान है कि एसे पवित्रात्मा पुरुप की मूर्ति मेरे हृदय में प्रकाशमान है। यह अभिमान उसकी उन्मत्तता का कारण है, उसके प्रेम का पुरस्कार है।

दूसरे मास में वृजरानी ने 'वालाजी' के स्वागत मे एक प्रभावशाली कविता लिखी। यह एक विलक्षण रचना थी। जब यह मुद्रित हुई तो विद्या जगत् विरजन की काव्य-प्रतिभा से परिचित होते हुए भी, चमत्कृत हो गया। वह कल्पना-रूपी पक्षी, जो काव्य-गगन में वायुमण्डल से भी आगे निकल जाता था, अवकी तारा बनकर चमका। एक-एक शब्द आकाश-वाणी की ज्योति से प्रकाशित था। जिन लोगों ने यह कविता पढ़ी, वे बालाजी के भक्त हो गये। कवि वह सँपेरा है जिसकी पिटारी में सर्पों के स्थान में हृदय बन्द होते है।

विरजन—मैं तो प्रथम ही जान गयी थी कि उन्होंने अवश्य संन्यास ले लिया होगा।

माधवी पृथ्वी की ओर देख रही थी, मुख से कुछ न बोली।

विरजन—तब में और अब में कितना अन्तर है! मुखमण्डल से कान्ति झलक रही है। तब ऐसे सुन्दर न थे।

माधवी—हूँ।

विरजन—ईश्वर उनकी सहायता करे। बड़ी तपस्या की है। (नेत्रों में जल भरकर) कैसा सयोग है! हम और वे सग सग खेले, सग-सग रहे, आज वे सन्यासी हैं और मैं वियोगिनी। न जाने उन्हें हम लोगों की कुछ सुध भी है या नहीं। जिसने संन्यास ले लिया, उसे किसी से क्या मतलब? जब चाची के पास पत्र लिखा तो भला हमारी सुधि क्या होगी? माधवी? बालकपन में वे कभी योगी योगी खेलते तो मै मिठाइयों की भिक्षा दिय करती थी।

माधवी ने रोते हुए 'न-जाने कब दर्शन होंगे, कहकर लज्जा से सिर झुका लिया।

विरजन—शीघ्र ही आयेंगे। प्राणनाथ ने यह लेख बहुत सुन्दर लिखा है।

माधवी—एक एक शब्द से भक्ति टपकती है।

विरजन—वक्तृता की कैसी प्रशसा की है! उनकी वाणी में तो पहले ही जादू था, अब क्या पूछना! प्राणनाथ के चित्त पर जिसकी वाणी का ऐसा प्रभाव हुआ, वह समस्त पृथ्वी पर अपना जादू फैला सकता है।

माधवी—चलो, चाची के यहाँ चलें।

विरजन—हाँ, उनका ता ध्यान ही नहीं रहा। देखें, क्या कहती हैं। प्रसन्न तो क्या होंगी?

माधवी—उनकी तो अभिलाषा ही यह थी प्रसन्न क्यों न होंगी?

विरजन—चल! माता ऐसा समाचार सुनकर कभी प्रसन्न नहीं हो सकती।

दोनों स्त्रियाँ घर से बाहर निकलीं। विरजन का मुखकमलमुर झाया हुआ था, पर माधवी का अग अंग हर्ष से खिला जाता था। कोई उससे पूछे - 'तेरे चरण अब पृथ्वी पर क्यों नहीं पड़ते? तेरे पीले वदन पर क्यों प्रसन्नता की लाली झलक रही है? तुझे कौन-सी सम्पत्ति मिल गयी? तू अब शोकान्वित और उदास क्यों नहीं दिखायी पड़ती? तुझे अपने प्रियतम से मिलने की अब कोई आशा नहीं तुझ पर प्रेम की दृष्टि कभी नहीं पहुँची, फिर तू क्यों फूली नहीं समाती?' इसका उत्तर माधवी क्या देगी? कुछ नहीं। वह सिर झुका लेगी, उसकी आँखें नीचे झुक जायँगी, जैसे डालियाँ फूलों के भार से झुक जाती है। कदाचित् उनसे कुछ अश्रु-विन्दु भी टपक पड़ें; किन्तु उसकी जिह्वा से एक शब्द भी न निकलेगा।

माधवी प्रेम के मद से मतवाली है। उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त है। उसका प्रेम हाट का सोदा नहीं। उसका प्रेम किसी वस्तु का भूखा नहीं है। वह प्रेम के बदले प्रेम नहीं चाहती। उसे अभिमान है कि ऐसे पवित्रात्मा पुरुष की मूर्त्ति मेरे हृदय में प्रकाशमान है। यह अभिमान उसकी उन्मत्तता का कारण है, उसके प्रेम का पुरस्कार है।

दूसरे मास में वृजरानी ने 'बालाजी' के स्वागत में एक प्रभावशाली कविता लिखी। यह एक विलक्षण रचना थी। जब यह मुद्रित हुई तो विद्या जगत् विरजन की काव्य-प्रतिभा से परिचित होते हुए भी. चमत्कृत हो गया। वह कल्पना-रूपी पक्षी, जो काव्य-गगन मे वायुमण्डल से भी आगे निकल जाता था, अबकी तारा बनकर चमका। एक-एक शब्द आकाश-वाणी की ज्योति से प्रकाशित था। जिन लोगों ने यह कविता पढ़ी, वे बालाजी के भक्त हो गये। कवि वह सँपेरा है जिसकी पिटारी मे सर्पों के स्थान में हृदय बन्द होते हैं।

———

[२६]

काशी में आगमन

जब से वृजरानी का काव्य-चन्द्र उदय हुआ, तभी से उसके यहाँ सदैव महिलाओं का जमघट लगा रहता था। नगर मे स्त्रियों की कई सभाएँ थीं। उनके सम्बन्ध का सारा भार उसी को उठाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त अन्य नगरों से भी बहुधा स्त्रियाँ उससे भेंट करने को आती रहती थीं। जो तीर्थयात्रा करने के लिए काशी आता, वह विरजन से अवश्य मिलता। राजा धर्मसिंह ने उसकी कविताओं का सर्वाङ्ग-सुन्दर संग्रह प्रकाशित किया था। इस संग्रह ने उसके काव्य-चमत्कार का डङ्का बजा दिया था। भारतवर्ष की कौन कहे, यूरोप और अमेरिका के प्रतिष्ठित कवियों ने भी उसे उसकी काव्य-मनोहरता पर धन्यवाद दिया था। भारतवर्ष में एकाध ही कोई रसिक मनुष्य रहा होगा, जिसका पुस्तकालय उसकी पुस्तक से सुशोभित न होगा। विरजन की कविताओं की प्रतिष्ठा करनेवालों में बालाजी का पद सबसे ऊँचा था। वे अपनी प्रभावशालिनी वक्तृताओं और लेखों में बहुधा उसी के वाक्यों का प्रमाण दिया करते थे। उन्होंने 'सरस्वती' में एक बार उसके संग्रह की सविस्तार समालोचना भी लिखी थी।

एक दिन प्रातःकाल ही सीता, चन्द्रकुँवर, रुक्मिणी और रानी विरजन के घर आयीं। चन्दा ने इन स्त्रियों को फर्श पर बिठाया और आदर-सत्कार किया। विरजन वहाँ नहीं थीं, क्योंकि उसने प्रभात का समय काव्य-चिन्तन के लिए नियत कर लिया था। उस समय वह किसी आवश्यक कार्य के अतिरिक्त सखियों-सहेलियों से मिलती-जुलती नहीं थी। वाटिका में एक रमणीक कुञ्ज था। गुलाब की सुगन्धि से सुरभित वायु चलती थी। वहीं विरजन एक शिलासन पर बैठी हुई काव्य रचना किया करती थी। वह काव्य-रूपी समुद्र से जिन मोतियों को निकालती, उन्हें माधवी लेखनी की माला में पिरो लिया करती थी। आज बहुत दिनों के बाद नगर-वासियों

के अधिक अनुरोध करने पर विरजन ने बालाजी को काशी मे आने का निमन्त्रण देने के लिए लेखनी को उठाया था। बनारस ही वह नगर था, जिसका स्मरण कभी-कभी बालाजी को व्यग्र कर दिया करता था। किन्तु काशीवालों के निरन्तर आग्रह करने पर भी उन्हें काशी आने का अवकाश न मिलता था। वे सिंघल और रंगून तक गये; परन्तु उन्होंने काशी की ओर मुख न फेरा। इस नगर को वे अपना परीक्षा-भवन समझते थे। इसीलिए आज विरजन उन्हें काशी आने का निमन्त्रण दे रही है। लोगों का विचार है कि यह निमन्त्रण उन्हें अवश्य खींच लायेगा। जब कोई नवीन विचार आ जाता है, तो विरजन का चन्द्रानन चमक उठता है और माधवी के वदन पर प्रसन्नता की झलक आ जाती है। वाटिका में बहुत से पाटल-पुष्प खिले हुए है, रजनी की ओस से मिलकर वे इस समय परम शोभा दे रहे हैं, परन्तु इस समय जो नवविकास और छटा इन दोनों पुष्पों पर है, उसे देख-देखकर दूसरे फूल लज्जित हुए जाते हैं।

नौ बजते-बजते विरजन घर मे आयी। सेवती ने कहा—आज बड़ी देर लगायी।

विरजन—कुंती ने सूर्य को बुलाने के लिए कितनी तपस्या की थी।

सीता—बाला जी बड़े निष्ठुर है। मै तो ऐसे मनुष्य से कभी न बोलूँ।

रुक्मिणी—जिसने संन्यास ले लिया, उसे घर-बार से क्या नाता?

चन्द्रकुँवर—यहाँ आयेंगे तो मै मुख पर कह दूँगी कि महाशय, यह नखरे कहाँ सीखे?

रुक्मिणी—महारानी! ऋषि-महात्माओं का तो शिष्टाचार किया करो। जिह्वा क्या है, कतरनी है।

चन्द्रकुँवर—और क्या, कब तक सन्तोष करें जी! सब जगह जाते हैं, यहीं आते पैर थकते है।

विरजन—(मुस्कराकर) अब बहुत शीघ्र दर्शन पाओगी। मुझे

सीता—धन्य भाग्य कि दर्शन मिलेंगे। मै तो जब उनका वृत्तान्त पढ़ती हूँ तो यही जी चाहता है कि पाऊँ तो चरण पकड़कर घण्टों रोऊँ।

रुक्मिणी – ईश्वर ने उनके हाथों में बड़ा यश दिया है। दारानगर की रानी साहिबा मर चुकी थीं, साँस टूट रही थी कि बालाजी को सूचना हुई। झट आ पहुँचे और क्षणमात्र में उठाकर बैठा दिया। हमारे मुंशीजी (पति) उन दिनों वहीं थे। कहते थे कि रानीजी ने कोश की कुञ्जी बालाजी के चरणों पर रख दी और कहा—'आप इसके स्वामी हैं।' बालाजी ने कहा—मुझे धन की आवश्यकता नहीं, आप अपने राज्य में तीन सौ गोशालाएँ खुलवा दीजिये।' मुख से निकलने की देर थी। आज दारानगर में दूध की नदी बहती है। ऐसा महात्मा कौन होगा।

चन्द्रकुँवर—राजा नवलखा का तपेदिक उन्हीं की बूटियों से छूटा। सारे वैद्य डाक्टर जवाब दे चुके थे। जब बालाजी चलने लगे, तो महारानीजी ने नौ लाख का मोतियों का हार उनके चरणों पर रख दिया। बालाजी ने उसकी ओर देखा तक नहीं।

रानी—कैसे रूखे मनुष्य हैं!

रुक्मिणी—हाँ और क्या, उन्हें उचित था कि हार ले लेते, नहीं-नहीं, कण्ठ में डाल लेते।

विरजन—नहीं, लेकर रानी को पहिना देते। क्यों सखी?

रानी—हाँ, मैं उस हार के लिए गुलामी लिख देती।

चन्द्रकुँवर—हमारे यहाँ (पति) तो भारत सभा के सभ्य बैठे हैं। ढाई सौ रुपए लाख यत्न करके रख छोड़े थे, उन्हें यह कहकर उठा ले गये कि घोड़ा लेंगे। क्या भारत-सभावाले बिना घोड़े के नहीं चलते?

रानी—कल ये लोग श्रेणी बाँधकर मेरे घर के सामने से जा रहे थे। बड़े भले मालूम होते थे।

इतने ही में सेवती नवीन समाचार-पत्र ले आयी।

विरजन ने पूछा—कोई ताजा समाचार है?

सेवती—हाँ, वालाजी मानिकपुर आये हैं। एक अहीर ने अपनी पुत्री के विवाह का निमन्त्रण भेजा था। उस पर प्रयाग से भारतसभा के सभ्यों-सहित रात को चलकर मानिकपुर पहुँचे। अहीरों ने बड़े उत्साह और समारोह के साथ उनका स्वागत किया है और सबने मिलकर पाँच सौ गौएँ उन्हें भेंट दी हैं। वालाजी ने वधू को आशीर्वाद दिया और दूल्हे को हृदय से लगाया। पाँच अहीर भारतसभा के सभ्य नियत हुए।

विरजन—बड़े अच्छे समाचार हैं। माधवी, इसे काट के रख लेना। और कुछ?

सेवती—पटना के पासियों ने एक ठाकुरद्वारा बनवाया है। वहाँ की भारत-सभा ने बड़ी धूमधाम से उत्सव किया।

विरजन—पटना के लोग बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

चन्द्रकुँवर—गड़ूरियाँ भी अब सिन्दूर लगायेंगी। पासी लोग ठाकुर-द्वारे बनवायेंगे?

रुक्मणी—क्यों, वे मनुष्य नहीं हैं? ईश्वर ने उन्हें नहीं बनाया! आप ही अपने स्वामी की पूजा करना जानती हैं?

चन्द्रकुँवर—चलो, हटो, मुझे पासियों से मिलाती हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

रुक्मिणी—हाँ, तुम्हारा रङ्ग गोरा है न? और वस्त्र-आभूषणों से सजी हुई हो। बस, इतना ही अन्तर है कि और कुछ?

चन्द्रकुँवर—इतना ही अन्तर क्यों है? पृथ्वी को आकाश से मिलाती हो? यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं कछवाहों के वंश में हूँ, कुछ खबर है?

रुक्मिणी—हाँ, जानती हूँ, और नहीं जानती थी तो अब जान गयी। तुम्हारे ठाकुरसाहब (पति) किसी पासी से बढ़कर मल्ल-युद्ध करेंगे? या सिर टेढ़ी पाग रखना जानते हैं? मैं जानती हूँ कि कोई छोटा-सा पासी भी उन्हें काँख-तले दबा लेगा।

विरजन—अच्छा, अब इस विवाद को जाने दो। तुम दोनों जब आती हो, लड़ती ही आती हो।

सेवती—पिता और पुत्र का कैसा सयोग हुआ है? ऐसा मालूम होता है कि मुन्शी शालिग्राम ने प्रतापचन्द्र ही के लिये सन्यास लिया था। यह सब उन्हीं की शिक्षा का फल है।

रुक्मिणी—हाँ और क्या? मुन्शी शालिग्राम तो अब स्वामी ब्रह्मानन्द कहलाते हैं। प्रताप को देखकर पहचान गये होंगे।

सेवती—आनन्द से फूले न समाये होंगे।

रुक्मिणी—यह भी ईश्वर की प्रेरणा थी, नहीं तो प्रतापचन्द्र मानसरोवर क्या करने जाते?

सेवती—ईश्वर की इच्छा के बिना कोई बात होती है?

विरजन—तुम लोग मेरे लालाजी को तो भूल ही गयीं। ऋषिकेश में पहले लालाजी ही से प्रतापचन्द्र की भेंट हुई थी। प्रताप उनके साथ साल-भर तक रहे। तब दोनों आदमी मानसरोवर की ओर चले।

रुक्मिणी—हाँ, प्राणनाथ के लेख में तो यह वृत्तान्त था। बालाजी तो यही कहते हैं कि मुन्शी सजीवनलाल से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त न होता, तो मैं भी माँगने-खानेवाले साधुओं में ही होता।

चन्द्रकुँवर—इनकी आत्मोन्नति के लिए विधाता ने पहले ही से सब सामान कर दिये थे।

सेवती—तभी इतनी-सी अवस्था में भारत के सूर्य बने हुए हैं। अभी पचीसवें वर्ष में होंगे?

विरजन—नहीं, तीसवाँ वर्ष है; मुझसे साल भर के जेठे हैं।

सेवती—सुवामा तो उनकी कीर्ति सुन-सुनकर बहुत खुश होती होंगी।

रुक्मिणी—मैंने तो उन्हें जब देखा, उदास ही देखा।

चन्द्रकुँवर—उनके सारे जीवन की अभिलाषाओं पर ओस पड़ गयी। उदास क्यों न होंगी?

रुक्मिणी—उन्होंने तो देवीजी से यही वरदान माँगा था।

चन्द्रकुँवर—तो क्या जाति की सेवा गृहस्थ रहकर नहीं हो सकती?

रुक्मिणी—जाति ही की क्या, कोई भी सेवा गृहस्थ रहकर नहीं हो सकती। गृहस्थ केवल अपने बाल-बच्चों की सेवा कर सकता है।

चन्द्रकुँवर—करनेवाले सब कुछ कर सकते हैं न करनेवालों के लिए सौ बहाने हैं।

एक मास और बीता। विरजन की नयी कविता स्वागत का सन्देशा लेकर बालाजी के पास पहुँची; परन्तु यह न प्रकट हुआ कि उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार किया या नहीं। काशीवासी प्रतीक्षा करते-करते थक गये। बालाजी प्रति दिन दक्षिण की ओर बढ़ते चले जाते थे। निदान लोग निराश हो गये और सबसे अधिक निराशा विरजन को हुई।

एक दिन जब किसी को ध्यान भी न था कि बालाजी काशी आयेंगे, प्राणनाथ ने आकर कहा—बहिन! लो, प्रसन्न हो जाओ, आज बालाजी आ रहे हैं।

विरजन कुछ लिख रही थी, हाथों से लेखनी छूट पड़ी। माधवी उठकर द्वार की ओर लपकी। प्राणनाथ ने हँसकर कहा—क्या अभी आ थोड़े ही गये हैं कि इतनी उद्विग्न हुई जाती हो?

माधवी—कब आयेंगे? इधर ही से होकर जायेंगे न?

प्राणनाथ—यह तो नहीं ज्ञात है कि किधर से आयेंगे। उन्हें आडम्बर और धूमधाम से बड़ी घृणा है। इसी लिए पहिले से आने की तिथि नहीं नियत की। राना साहब के पास आज प्रात काल एक मनुष्य ने आकर सूचना दी कि बालाजी आ रहे हैं और कहा है कि मेरी अगवानी के लिए धूमधाम न हो; किन्तु यहाँ के लोग कब मानते हैं? अगवानी होगी, समारोह के साथ सवारी निकलेगी और ऐसी कि इस नगर के इतिहास में स्मरणीय हो। चारों ओर आदमी छूटे हुए हैं। ज्योंही उन्हें आते देखेंगे, वे लोग प्रत्येक महल्ले में टेलिफोन द्वारा सूचना दे देंगे।

कॉलेज और स्कूलों के विद्यार्थी वर्दियाँ पहिने और झण्डियाँ लिये इन्तजार में खड़े हैं। घर-घर पुष्प-वर्षा की तैयारियाँ हो रही हैं। बाजार में दूकानें सजायी जा रही हैं। नगर में एक धूम-सी मची हुई है।

माधवी—इधर से जायेंगे तो हम रोक लेंगी।

प्राणनाथ—हमने कोई तैयारी तो की ही नहीं। रोक क्या लेंगे? और यह भी तो नहीं ज्ञात है कि किधर से जायेंगे।

विरजन—(सोचकर) आरती उतारने का प्रबन्ध तो करना ही होगा।

प्राणनाथ—हाँ, अब इतना भी न होगा? मै बाहर बिछावन आदि बिछवाता हूँ।

प्राणनाथ बाहर की तैयारियों में लगे। माधवी फूल चुनने लगी; विरजन ने चाँदी का थाल धो-धोकर स्वच्छ किया। सेवती और चन्द्रा भीतर सारी वस्तुएँ क्रमानुसार सजाने लगीं।

माधवी हर्ष के मारे फूली न समाती थी। बारम्बार चौंक-चौंक कर द्वार की ओर देखती कि कहीं आ तो नहीं गये। बारम्बार कान लगाकर सुनती कि कहीं बाजे की ध्वनि तो नहीं आ रही है। हृदय हर्ष के मारे धड़क रहा था। फूल चुनती थी, किन्तु ध्यान दूसरी ओर था। हाथों में कितने ही काँटे चुभा लिये। फूल के साथ कई शाखाएँ मरोड़ डालीं। कई बार शाखाओं में उलझकर गिरी। कई बार साड़ी काँटों में फँसा दी। उस समय उसकी दशा बिलकुल बच्चों की-सी थी।

किन्तु विरजन का बदन बहुत ही मलिन था। जैसे जलपूर्ण पात्र तनिक हिलने से भी छलक जाता है, उसी प्रकार ज्यों-ज्यों प्राचीन घटनाएँ स्मरण आती थीं, त्यों-त्यों उसके नेत्रों से अश्रु से छलक पड़ते थे। आह! कभी वे दिन थे कि हम और वह भाई-बहिन थे। साथ खेलते थे, साथ रहते थे। आज चौदह वर्ष व्यतीत हुए, उनका मुख देखने का सौभाग्य भी न हुआ। तब मैं तनिक भी रोती तो वह मेरे आँसू पोंछते और मेरा जी बहलाते। अब उन्हें क्या सुधि कि ये आँखें कितनी रोयी हैं और इस

हृदय ने कैसे-कैसे कष्ट उठाये हैं। क्या खबर थी कि हमारे भाग्य ऐसे दृश्य दिखायेंगे? एक वियोगिन हो जायेगी और दूसरा संन्यासी।

अकस्मात् माधवी को ध्यान आया कि सुवामा को कदाचित् बालाजी के आने की सूचना न हुई हो। वह विरजन के पास आकर बोली—मैं तनिक चची के यहाँ जाती हूँ। न-जाने किसी ने उनसे कहा या नहीं?

प्राणनाथ बाहर से आ रहे थे, यह सुनकर बोले—वहाँ सबसे पहले सूचना दी गयी। भली-भाँति तैयारियाँ हो रही हैं। बालाजी भी सीधे घर ही की ओर पधारेंगे। इधर से अब न आयेंगे।

विरजन—तो हम लोगों को चलना चाहिये। कहीं देर न हो जाय।

माधवी—आरती का थाल लाऊँ?

विरजन—कौन ले चलेगा? महरी को बुला लो (चौंककर) अरे! तेरे हाथों में यह रुधिर कहाँ से आया?

माधवी—ऊँह! फूल चुनती थी, काँटे लग गये होंगे।

चन्द्रा—अभी नयी साड़ी आयी है। आज ही फाड़ के रख दी।

माधवी—तुम्हारी बला से।

माधवी ने यह कह तो दिया, किन्तु आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं। चन्द्रा साधारणतः बहुत भली स्त्री थी। किन्तु जबसे बाबू राधाचरण ने जाति सेवा के लिए नौकरी से इस्तीफा दे दिया था, वह बालाजी के नाम से चिढ़ती थी। विरजन से तो कुछ कह न सकती थी; परन्तु माधवी को छेड़ती रहती थी। विरजन ने चन्द्रा की ओर घूरकर माधवी से कहा—जाओ, सन्दूक से दूसरी साड़ी निकाल लो। इसे रख आओ। राम-राम, मार के हाथ छलनी कर डाले!

माधवी—देर हो जायगी, मैं इसी भाँति चलूँगी।

विरजन—नहीं, अभी घण्टा भर से अधिक अवकाश है।

यह कहकर विरजन ने प्यार से माधवी के हाथ धोये। उसके बाल गूँधे, एक सुन्दर साड़ी पहिनायी, चादर ओढ़ायी और उसे हृदय से लगा-

कर सजल नेत्रों से देखते हुए कहा—बहिन ! देखो, धीरज हाथ से न जाय।

माधवी मुस्कुराकर बोली—तुम मेरे ही सङ्ग रहना, मुझे सँभालती रहना। मुझे अपने हृदय पर आज भरोसा नहीं है।

विरजन ताड़ गयी कि आज प्रेम ने उन्मत्तता का पद ग्रहण किया है और कदाचित् यही उसकी पराकाष्ठा है। हाँ ! यह बावली बालू की भीत उठा रही है।

माधवी थोड़ी देर के बाद विरजन, सेवती, चन्द्रा आदि कई स्त्रियों के सङ्ग सुवामा के घर चली। वे वहाँ की तैयारियाँ देखकर चकित हो गयीं। द्वार पर एक बहुत बड़ा चँदोवा बिछावन, शीशे और भाँति-भाँति की सामग्रियों से सुसज्जित खड़ा था। बधाई बज रही थी। बड़े-बड़े टोकरों में मिठाइयाँ और मेवे रखे हुए थे। नगर के प्रतिष्ठित सभ्य उत्तमोत्तम वस्त्र पहिने हुए स्वागत करने को खड़े थे। एक भी फिटन या गाड़ी दिखायी नहीं देती थी; क्योंकि बालाजी सर्वदा पैदल ही चला करते थे। बहुत-से लोग गले में झोलियाँ डाले हुए दिखायी देते थे, जिनमें बालाजी पर समर्पण करने के लिए रुपये-पैसे भरे हुए थे। राजा धर्मसिंह के पाँचों लड़के रङ्गीन वस्त्र पहिने, केसरिया पगड़ी बाँधे, रेशमी झण्डियाँ कमर में खोंसे बिगुल बजा रहे थे। ज्योंही लोगों की दृष्टि विरजन पर पड़ी, सहस्रों मस्तक शिष्टाचार के लिए झुक गये। जब ये देवियाँ भीतर गयीं तो वहाँ भी आँगन, दालान और कमरे नवागत वधू की भाँति सुसज्जित दिखे। सैकड़ों स्त्रियाँ मङ्गल गाने के लिए बैठी थीं। पुष्पों की राशियाँ ठौर-ठौर पर पड़ी थीं। सुवामा एक श्वेत साड़ी पहिने सन्तोष और शान्ति की मूर्ति बनी हुई द्वार पर खड़ी थी। विरजन और माधवी को देखते ही सजल-नयन हो गयी। विरजन बोली—चची ! आज इस घर के भाग्य जग गये।

सुवामा ने रोकर कहा—तुम्हारे कारण मुझे आज यह दिन देखने का सौभाग्य हुआ। ईश्वर तुम्हें इसका फल दे !

दुखिया माता के अन्तःकरण से यह आशीर्वाद निकला। एक दुखिया

माता के शाप ने राजा दशरथ को पुत्रशोक में मृत्यु का स्वाद चखाया था। क्या सुवामा का यह आशीर्वाद प्रभावहीन होगा?

दोनों अभी इसी प्रकार बातें कर रही थीं कि घण्टे और शंख की ध्वनि आने लगी। धूम मची कि बालाजी आ पहुँचे। स्त्रियों ने मंगल-गान आरम्भ किया। माधवी ने आरती का थाल ले लिया और मार्ग की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगी। कुछ ही काल में अद्वैताम्बरधारी नवयुवकों का समुदाय दिखायी पड़ा। भारत सभा के सवा सौ सभ्य घोड़ों पर सवार चले आते थे। उनके पीछे अगणित मनुष्यों का झुण्ड था। सारा नगर टूट पड़ा। कन्धे से कन्धा छिला जाता था; मानो समुद्र की तरगें बढ़ती चली जाती हैं। इस भीड़ में बालाजी का मुखचन्द्र ऐसा दिखायी पड़ता था, मानों मेघाच्छादित चन्द्र उदय हुआ है। ललाट पर अरुण चदन का तिलक था और कण्ठ में एक गेरुए रंग की चादर पड़ी हुई थी।

सुवामा द्वार पर खड़ी थी, ज्योंही बालाजी का स्वरूप उसे दिखायी दिया धीरज हाथ से जाता रहे। द्वार से बाहर निकल आयी और सिर झुकाये, नेत्रों से मुक्ताहार गूँथती बालाजी की ओर चली। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। वह उसे हृदय से लगाने के लिए उद्विग्न है।

सुवामा को इस प्रकार आते देखकर सब लोग रुक गये। विदित होता था कि आकाश से कोई देवी उतर आयी है। चतुर्दिक सन्नाटा छा गया। बालाजी ने कई डग आगे बढ़कर माताजी को प्रणाम किया और उनके चरणों पर गिर पड़े। सुवामा ने उनका मस्तक अपने अङ्क में लिया। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। उस पर आँखों से मोतियों की वृष्टि कर रही है।

इस उत्साहवर्द्धक दृश्य को देखकर लोगों के हृदय जातीयता के मद से मतवाले हो गये। पचास सहस्त्र स्वर से ध्वनि आयी—'बालाजी की जय।' मेघ गर्जा और चतुर्दिक् से पुष्पवृष्टि होने लगी। फिर उसी प्रकार दूसरी

वार मेघ की गर्जना हुई—'मुन्शी शालिग्राम की जय' और सहस्त्रों मनुष्य स्वदेश-प्रेम के मद से मतवाले होकर दौड़े और सुवामा के चरणों की रज माथे पर मलने लगे। इन ध्वनियों से सुवामा ऐसी प्रमुदित हो रही थी जैसे महुअर के सुनने से नागिन मतवाली हो जाती है। आज उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है। अमूल्य रत्न पाने से वह रानी हो गयी है। इस रत्न के कारण आज उसके चरणों की रज लोगों के नेत्रों का अंजन और माथे का चन्दन बन रही है।

अपूर्व दृश्य था। वारम्बार जय-जयकार की ध्वनि उठती थी और स्वर्ग के निवासियों को भारत की जागृति का शुभ-सम्वाद सुनाती थी। माता अपने पुत्र को कलेजे से लगाये हुए है। बहुत दिन के अनन्तर उसने अपना खोया हुआ लाल पाया है, वह लाल जो उसकी जन्म-भर की कमाई था। फूल चारों ओर से निछावर हो रहे हैं। स्वर्ण और रत्नों की वर्षा हो रही है। माता और पुत्र कमर तक पुष्पों के समुद्र में डूबे हुए हैं। ऐसा प्रभावशाली दृश्य किसके नेत्रों ने देखा होगा।

सुवामा बालाजी का हाथ पकड़े हुए घर की ओर चली। द्वार पर पहुँचते ही स्त्रियाँ मंगल-गीत गाने लगीं और माधवी स्वर्ण-रचित थाल में धूप, दीप और पुष्पों से आरती करने लगी। विरजन ने फूलों की माला—जिसे माधवी ने अपने रक्त से रञ्जित किया था—उनके गले में डाल दी। बालाजी ने सजल-नेत्रों से विरजन की ओर देखकर प्रणाम किया।

माधवी को बालाजी के दर्शन की कितनी अभिलाषा थी, किन्तु इस समय उसके नेत्र पृथ्वी की ओर झुके हुए हैं। वह बालाजी की ओर नहीं देख सकती। उसे भय है कि मेरे नेत्र हृदय के भेद को खोल देंगे। उनमें प्रेम-रस भरा हुआ है। अब तक उसकी सब से बड़ी अभिलाषा यह थी कि बालाजी का दर्शन पाऊँ। आज प्रथम बार माधवी के हृदय में नयी अभिलाषाएँ उत्पन्न हुई हैं, आज अभिलाषाओं ने सिर उठाया है, मगर पूर्ण होने के लिए नहीं, आज अभिलाषा-वाटिका में एक नवीन कली लगी है,

मगर खिलने के लिए नहीं; वरन् मुरझाने के लिए और मुरझाकर मिट्टी में मिल जाने के लिए। माधवी को कौन समझाये कि तू इन अभिलाषाओं को हृदय में न उत्पन्न होने दे। ये अभिलाषाएँ तुझे बहुत रुलायेंगी। तेरा प्रेम काल्पनिक है। तू उसके स्वाद से परिचित है। क्या अब वास्तविक प्रेम का स्वाद लिया चाहती है?

---

[१४]

प्रेम का स्वप्न

मनुष्य का हृदय अभिलाषाओं का क्रीड़ास्थल और कामनाओं का आवास है। कोई समय वह था जब कि माधवी माता के अंक में खेलती थी। उस समय हृदय अभिलाषा और चेष्टाहीन था। किन्तु जब मिट्टी के घरौंदे बनाने लगी उस समय मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी गुड़ियों का विवाह करूँगी। सब लड़कियाँ अपनी गुड़ियाँ व्याह रही हैं; क्या मेरी गुड़ियाँ कुँवारी रहेंगी? मैं अपनी गुड़िया के लिए गहने बनवाऊँगी, उसे वस्त्र पहिनाऊँगी, उसका विवाह रचाऊँगी। इस इच्छा ने उसे कई मास तक रुलाया। पर गुड़िया के भाग्य में विवाह न बदा था। एक दिन मेघ घिर आये और मूसलाधार पानी बरसा। घरौंदा वृष्टि में बह गया और गुड़ियों के विवाह की अभिलाषा अपूर्ण ही रह गयी।

कुछ काल और बीता। वह माता के संग विरजन के यहाँ आने-जाने लगी। उसकी मीठ-मीठी बातें सुनती और प्रसन्न होती, उसके थाल में खाती और उसकी गोद में सोती। उस समय भी उसके हृदय में यह इच्छा थी कि मेरा भवन परम सुन्दर होता, उसमें चाँदी के किवाड़ लगे होते, भूमि ऐसी स्वच्छ होती कि मक्खी बैठे और फिसल जाय! मैं विरजन अपने घर ले जाती, वहाँ अच्छे-अच्छे पक्वान्न बनाती और उत्तम पलँग पर सुलाती और भली-भाँति उसकी करती

वर्षों तक हृदय में चुटकियाँ लेती रही। किन्तु उसी घरौंदे की भाँति यह घर भी ढह गया और आशाएँ निराशा में परिवर्तित हो गयीं।

कुछ काल और बीता, जीवन-काल का उदय हुआ। विरजन ने उसके चित्त पर प्रतापचन्द्र का चित्र खींचना आरम्भ किया। उन दिनों इस चर्चा के अतिरिक्त उसे कोई बात अच्छी ही न लगती थी। निदान उसके हृदय में प्रतापचन्द्र की चेरी बनने की इच्छा उत्पन्न हुई। पड़े-पड़े हृदय से बातें किया करती? रात्रि में जागरण करके मन का मोदक खाती। इन विचारों से चित्त पर एक उन्माद-सा छा जाता, किन्तु प्रतापचन्द्र इसी बीच में गुप्त हो गये और उसी मिट्टी के घरौंदे की भाँति ये हवाई किले भी ढह गये। आशा के स्थान पर हृदय में शोक रह गया।

अब निराशा ने उसके हृदय में आशा का स्थान ही शेष न रखा। वह देवताओं की उपासना करने लगी, व्रत रखने लगी कि प्रतापचन्द्र पर समय की कुदृष्टि न पड़ने पाये। इस प्रकार अपने जीवन के कई वर्ष उसने तपस्विनी बनकर व्यतीत किये। कल्पित प्रेम के उल्लास में चूर रहती। किन्तु आज तपस्विनी का व्रत टूट गया। मन में नूतन अभिलाषाओं ने सिर उठाया। दस वर्ष की तपस्या एक क्षण में भग हो गयी। क्या यह इच्छा भी उसी मिट्टी के घरौंदे की भाँति पद-दलित हो जायगी?

आज जब से माधवी ने बालाजी की आरती उतारी है, उसके आँसू नहीं रुके। सारा दिन बीत गया। एक-एक करके तारे निकलने लगे। सूर्य थककर छिप गया और पक्षीगण घोंसलों में विश्राम करने लगे; किन्तु माधवी के नेत्र नहीं थके। वह सोचती है कि हाय! क्या मैं इसी प्रकार रोने के लिए बनायी गयी हूँ? मैं कभी हँसी भी थी कि जिसके कारण इतना रोती हूँ? हाय! रोते-रोते आधी आयु बीत गयी, क्या यह शेष भी इसी प्रकार बीतेगी? क्या मेरे जीवन में एक दिन भी ऐसा न आयेगा, जिसे स्मरण करके सन्तोष हो कि मैंने भी कभी सुदिन देखे थे? आज के पहले माधवी कभी ऐसी नैराश्य-पीड़ित और छिन्न हृदया नहीं हुई थी।

वह अपने कल्पित प्रेम में निमग्न थी। आज उसके हृदय में नवीन अभिलाषाएँ उत्पन्न हुई हैं। अश्रु उन्हीं के प्रेरित हैं। जो हृदय सोलह वर्ष तक आशाओं का आवास रहा हो, वही इस समय माधवी की भावनाओं का अनुमान कर सकता है।

सुवामा के हृदय में भी नवीन इच्छाओं ने सिर उठाया है। जब तक बालाजी को देखा न था, तब तक उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह थी कि वह उन्हें आँख भरकर देखती और हृदय-शीतल कर लेती। आज जब आँख भर देख लिया तो कुछ और देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। शोक! वह इच्छा उत्पन्न हुई माधवी के घरौंदे की भाँति मिट्टी में मिल जाने के लिए।

आज सुवामा, विरजन और बालाजी में सायङ्काल तक बातें होती रहीं। बालाजी ने अपने अनुभवों का वर्णन किया। सुवामा ने अपनी रामकहानी सुनायी और विरजन ने कहा थोड़ा, किन्तु सुना बहुत। मुन्शी संजीवनलाल के सन्यास का समाचार पाकर दोनों रोयीं। जब दीपक जलने का समय आ पहुँचा, तो बालाजी गंगा की ओर सन्ध्या करने चले गये और सुवामा भोजन बनाने बैठी। आज बहुत दिनों के पश्चात् सुवामा मन लगाकर भोजन बना रही है। दोनों बातें करने लगीं।

सुवामा—बेटी! मेरी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि मेरा लड़का संसार में प्रतिष्ठित हो और ईश्वर ने मेरी लालसा पूरी कर दी। प्रताप ने पिता और कुल का नाम उज्ज्वल कर दिया। आज जब प्रातःकाल मेरे स्वामीजी की जय सुनायी जा रही थी तो मेरा हृदय उमड़-उमड़ आया था। मैं केवल इतना चाहती हूँ कि वे यह वैराग्य त्याग दें। देश का उपकार करने से मैं उन्हें नहीं रोकती। मैंने तो देवीजी से यही वरदान माँगा था, परन्तु उन्हें संन्यासी के वेश में देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

विरजन सुवामा का अभिप्राय समझ गयी। बोली—चची! यह बात

तो मेरे चित्तमें पहिले ही से जमी हुई है; अवसर पाते ही अवश्य छेड़ूँगी।

सुवामा—अवसर तो कदाचित् ही मिले। इसका कौन ठिकाना? अभी जी में आये, कहीं चल दें। सुनती हूँ, सोंटा हाथ में लिये अकेले वनों में घूमते हैं। मुझसे अब बेचारी माधवी की दशा नहीं देखी जाती। उसे देखती हूँ तो जैसे कोई मेरे हृदय को मसोसने लगता है। मैंने बहुतेरी स्त्रियाँ देखी और अनेको का वृत्तान्त पुस्तकों में पढ़ा, किन्तु ऐसा प्रेम कहीं नहीं देखा। बेचारी ने आधी आयु रो-रोकर काट दी और कभी मुख न मैला किया। मैंने कभी उसे रोते नहीं देखा, परन्तु रोने वाले नेत्र और हँसनेवाले मुख छिपे नहीं रहते। मुझे ऐसी ही पुत्रवधू की लालसा थी, सो भी ईश्वर ने पूर्ण कर दी! तुमसे सत्य कहती हूँ, मैं उसे पुत्रवधू ही समझती हूँ। आज से नहीं, वर्षों से।

वृजरानी—आज उसे सारे दिन रोते ही बीता। बहुत उदास दिखायी देती है।

सुवामा—तो आज ही इसकी चर्चा छेड़ो। ऐसा न हो कि कल किसी ओर प्रस्थान कर दें, तो फिर एक युग प्रतीक्षा करनी पड़े।

वृजरानी—(सोचकर) चर्चा करने को तो मैं करूँ, किन्तु माधवी स्वयं जिस उत्तमता के साथ यह कार्य कर सकती है, कोई दूसरा नहीं कर सकता।

सुवामा—वह बेचारी अपने मुख से क्या कहेगी?

वृजरानी—उसके नेत्र सारी कथा कह देंगे।

सुवामा—लल्लू अपने मन में क्या कहेंगे?

वृजरानी—कहेंगे क्या? यह तुम्हारा भ्रम है जो तुम उसे कुँवारी समझ रही हो। वह प्रतापचन्द्र की पत्नी बन चुकी। ईश्वर के यहाँ उसका विवाह उनसे हो चुका। यदि ऐसा न होता तो क्या जगत् में पुरुष न थे? माधवी-जैसी स्त्री को कौन नेत्रों में न स्थान देगा? उसने अपना आधा यौवन व्यर्थ रो-रोकर बिताया है। उसने आज तक ध्यान में भी

किसी अन्य पुरुष को स्थान नहीं दिया। बारह वर्षों से तपस्विनी का जीवन व्यतीत कर रही है। वह पलँग पर नहीं सोयी। कोई रंगीन वस्त्र नहीं पहना। केश तक नहीं गुँथाये। क्या इन व्यवहारों से नहीं सिद्ध होता कि माधवी का विवाह हो चुका? हृदय का मिलाप सच्चा विवाह है। सिन्दूर का टीका, ग्रन्थि-बन्धन और भाँवर—ये सब संसार के ढकोसले हैं।

सुवामा—अच्छा, जैसा उचित समझो करो। मैं केवल जग-हँसाई से डरती हूँ।

रात को नौ बज गये थे। आकाश पर तारे छिटके हुए थे। माधवी वाटिका में अकेली बैठी हुई तारों को देखती थी और मन में सोचती थी कि ये देखने में कैसे चमकीले हैं, किन्तु अति दूर हैं, कोई वहाँ तक पहुँच सकता है? क्या मेरी आशाएँ भी उन्हीं नक्षत्रों की भाँति हैं? इतने में विरजन ने उसको हाथ पकड़कर हिलाया। माधवी चौंक पड़ी।

विरजन—अँधेरे में बैठी यहाँ क्या कर रही है?

माधवी—कुछ नहीं, तारों को देख रही हूँ। वे कैसे सुहावने लगते हैं, किन्तु मिल नहीं सकते।

विरजन के कलेजे में बर्छी-सी लग गयी। धीरज धरकर बोल—यह तारे गिनने का समय नहीं है। जिस अतिथि के लिए आज भोर ही में फूली नहीं समाती थी, क्या इसी प्रकार उसकी अतिथि-सेवा करेगी?

माधवी—मैं ऐसे अतिथि की सेवा के योग्य कब हूँ?

विरजन—अच्छा, यहाँ से उठो तो मैं अतिथि-सेवा की रीति बताऊँ।

दोनों भीतर आयीं। सुवामा भोजन बना चुकी थी। बालाजी को माता के हाथ की रसोई बहुत दिनों में प्राप्त हुई। उन्होंने बड़े प्रेम से भोजन किया। सुवामा खिलाती जाती थी और रोती जाती थी। जब बालाजी खा-पीकर लेटे, तो विरजन ने माधवी से कहा—अब यहाँ कोने में मुख बाँधकर क्यों बैठी हो?

माधवी—कुछ दो तो खाके सो रहूँ, अब यही जी चाहता है।

विरजन—माधवी ! ऐसी निराश न हो। क्या इतने दिनों का व्रत एक दिन में भग कर देगी ?

माधवी उठी, परन्तु उसका मन बैठा जाता था। जैसे मेघों की काली-काली घटाएँ उठती हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि अब जल-थल एक हो जायगा; परन्तु अचानक पछुवा वायु चलने के कारण सारी घटा काई की भाँति फट जाती है, उसी प्रकार इस समय माधवी की गति हो रही है।

वह शुभ दिन देखने की लालसा उसके मन में बहुत दिनों से थी। कभी वह दिन भी आयेगा जब कि मैं उनके दर्शन पाऊँगी ? और उनकी अमृत-वाणी से श्रवण तृप्त करूँगी ? इस दिन के लिए उसने कैसी मान-ताएँ मानी थीं ? इस दिन के ध्यान से ही उसका हृदय कैसा खिल उठता था ?

आज भोर ही से माधवी बहुत प्रसन्न थी। उसने बड़े उत्साह से फूलों का हार गूँथा था। सैकड़ों काँटे हाथ में चुभा लिए। उन्मत्त की भाँति गिर-गिर पड़ती थी। यह सब हर्ष और उमग इसलिए तो था कि आज वह शुभ दिन आ गया। आज वह दिन आ गया, जिसकी ओर चिर-काल से आँखें लगी हुई थीं। वह समय भी अब स्मरण नहीं, जब यह अभिलाषा मन में न रही हो। परन्तु इस समय माधवी के हृदय की वह गति नहीं है। आनन्द की भी सीमा होती है। कदाचित् वह माधवी के आनन्द की सीमा थी, जब वह वाटिका में झूम-झूमकर फूलों से आँचल भर रही थी। जिसने कभी सुख का स्वाद ही न चखा हो, उसके लिए इतना ही आनन्द बहुत है। वह बेचारी इससे अधिक आनन्द का भार नहीं सँभाल सकती। जिन अधरों पर कभी हँसी आयी ही नहीं, उनकी मुसकान ही हँसी है। तुम ऐसों से अधिक हँसी की आशा क्यों करते हो ? माधवी बालाजी की ओर चली, परन्तु इस प्रकार नहीं जैसे एक नवेली बहू आशाओं से भरी हुई शृङ्गार किये अपने पति के पास जाती है। वही घर था जिसे वह अपने देवता का मन्दिर समझती थी। जब वह मन्दिर

शून्य था, तब वह आ-आकर उसमे आँसुओं की पुष्प चढाती थी। आज जब देवता ने वास किया है, तो वह क्यों इस प्रकार मचल-मचलकर आ रही है?

रात्रि भली-भाँति आर्द्र हो चुकी थी। सड़क पर घण्टों के शब्द सुनायी दे रहे थे। माधवी दबे-पाँव बालाजी के कमरे के द्वार तक गयी। उसका हृदय धड़क रहा था। भीतर जाने का साहस न हुआ, मानो किसी ने पैर पकड़ लिए। उलटे पाँव फिर आयी और पृथ्वी पर बैठकर रोने लगी। उसके चित्त ने कहा—माधवी! यह बड़ी लज्जा की बात है। बालाजी की चेरी सही, माना कि तुझे उनसे प्रेम है; किन्तु तू उनकी स्त्री नहीं है। तुझे इस समय उनके गृह में रहना उचित नहीं है। तेरा प्रेम तुझे उनकी पत्नी नहीं बना सकता। प्रेम और वस्तु है और सोहाग और वस्तु है। प्रेम चित्त की प्रवृत्ति है और ब्याह एक पवित्र धर्म है। तब माधवी को एक विवाह का स्मरण हो आया। वर ने भरी सभा में पत्नी की बाँह पकड़ी थी और कहता था कि इस स्त्री को मैं अपने गृह की स्वामिनी और अपने मन की देवी समझता रहूँगा। इस सभा के लोग, आकाश, अग्नि और देवता इसके साक्षी रहें। हा! ये कैसे शुभ शब्द हैं! मुझे कभी ऐसे शब्द सुनने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ? मैं न अग्नि को अपना साक्षी बना सकती हूँ, न देवताओं को और न आकाश ही को; परन्तु हे अग्नि! हे आकाश के तारों! और हे देवलोक-वासियों! तुम साक्षी रहना कि माधवी ने बालाजी की पवित्र मूर्ति को हृदय में स्थान दिया; किन्तु किसी निकृष्ट विचार को हृदय में न आने दिया। यदि मैंने घर के भीतर पैर रखा हो तो ऐ अग्नि! तुम मुझे अभी जलाकर भस्म कर दो। हे आकाश! यदि तुमने अपने अनेक नेत्रों से मुझे गृह में जाते देखा हो, तो इसी क्षण मेरे ऊपर इन्द्र का वज्र गिरा दो।

माधवी कुछ काल तक इसी विचार में मग्न बैठी रही। अचानक उसके कान में झक-झक की ध्वनि आयी। उसने चौंककर देखा तो बालाजी का

कमरा अधिक प्रकाशित हो गया था और प्रकाश खिड़कियों से बाहर निकलकर आँगन में फैल रहा था। माधवी के पाँव-तले से मिट्टी निकल गयी। ध्यान आया कि मेज पर लैम्प भभक उठा। वायु की भाँति वह बालाजी के कमरे में घुसी। देखा तो लैम्प फटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा है और भूतल के बिछावन में तेल फैल जाने के कारण आग लग गयी है। दूसरे किनारे पर बालाजी सुख से सो रहे थे। अभी तक उनकी निद्रा न खुली थी। उन्होंने कालीन समेटकर एक कोने में रख दिया था। विद्युत् की भाँति लपककर माधवी ने वह कालीन उठा लिया और भभकती हुई ज्वाला के ऊपर गिरा दिया। धमाके का शब्द हुआ तो बालाजी ने चौंक कर आँखें खोलीं। घर में धुआँ भरा हुआ था और चतुर्दिक् तेल की दुर्गन्ध फैली हुई थी इसका कारण वह समझ गये। बोले—कुशल हुआ, नहीं तो कमरे में आग लग गयी थी।

माधवी—जी हाँ! यह लैम्प गिर पड़ा था।

बालाजी—तुम बड़े अवसर पर आ पहुँचीं।

माधवी—मैं यहीं बाहर बैठी हुई थी।

बालाजी—तुमको बड़ा कष्ट हुआ। अब जाकर शयन करो। रात बहुत आ गयी है।

माधवी—चली जाऊँगी। शयन तो नित्य ही करना है। यह अवसर न-जाने फिर कब आये?

माधवी की बातों में अपूर्व करुणा भरी थी। बालाजी ने उसकी ओर ध्यान-पूर्वक देखा। जब उन्होंने पहिले माधवी को देखा था, उस समय वह एक खिलती हुई कली थी और आज वह एक मुरझाया हुआ पुष्प है। न मुख पर सौन्दर्य था, न नेत्रों में आनन्द की झलक, न माँग में सोहाग का संचार था, न माथे में सिन्दूर का टीका। शरीर में आभूषणों का चिह्न भी न था। बालाजी ने अनुमान से जाना कि विधाता ने ठीक तरुणावस्था में इस दुखिया का सोहाग हरण किया है। परम उदास

होकर बोले—क्यों माधवी ! तुम्हारा तो विवाह हो गया है न ?

माधवी के कलेजे में कटारी चुभ गयी। सजल नेत्र होकर बोली—हाँ, हो गया है।

बालाजी—और तुम्हारा पति ?

माधवी—उन्हें मेरी कुछ सुध ही नहीं। उनका विवाह मुझसे नहीं हुआ ?

बालाजी—विस्मित होकर बोले—तुम्हारा पति करता क्या है ?

माधवी—देश की सेवा।

बालाजी की आँखों के सामने से एक पर्दा-सा हट गया। वे माधवी का मनोरथ जान गये और बोले—माधवी ! इस विवाह को कितने दिन हुए ?

बालाजी के नेत्र सजल हो गये और मुख पर जातीयता के मद का उन्माद-सा छा गया। भारतमाता ! आज इस पतितावस्था में भी तुम्हारे अंक में ऐसी-ऐसी देवियाँ खेल रही हैं, जो एक भावना पर अपने यौवन और जीवन की आशाएँ समर्पण कर सकती हैं। बोले—ऐसे पति को तुम त्याग क्यों नहीं देती ?

माधवी ने बालाजी की ओर अभिमान से देखा और कहा—स्वामी-जी ! आप अपने मुख से ऐसा न कहें ! मैं आर्य-बाला हूँ। मैंने गान्धारी और सावित्री के कुल में जन्म लिया है। जिसे एक बार मन से अपना पति मान चुकी उसे नहीं त्याग सकती। यदि मेरी आयु इसी प्रकार रोते-रोते कट जाय, तो भी अपने पति की ओर से मुझे कुछ भी खेद न होगा। जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेगा मैं ईश्वर से उनका हित चाहती रहूँगी। मेरे लिए यही क्या कम है, जो ऐसे महात्मा के प्रेम ने मेरे हृदय में निवास किया है ? मैं इसी को अपना सौभाग्य समझती हूँ। मैंने एक बार अपने स्वामी को दूर से देखा था। वह चित्र एक क्षण के लिए भी आँखों से नहीं उतरा। जब कभी मैं बीमार हुई हूँ, तो उसी चित्र ने मेरी सुश्रूषा

की है। जब कभी मैंने वियोग के आँसू बहाये हैं, तो उसी चित्र ने मुझे सान्त्वना दी है। उस चित्रवाले पति को मैं कैसे त्याग दूँ? मैं उसकी हूँ और सदैव उसी की रहूँगी। मेरा हृदय और मेरे प्राण सब उनकी भेंट हो चुके हैं। यदि वे कहें तो आज मैं अग्नि के अंक में ऐसे हर्षपूर्वक जा बैठूँ जैसे फूलों की शय्या पर। यदि मेरे प्राण उनके किसी काम आयें तो मैं उसे ऐसी प्रसन्नता से दे दूँ जैसे कोई उपासक अपने इष्टदेव को फल चढाता हो।

माधवी का मुखमण्डल प्रेम-ज्योति से अरुण हो रहा था। बालाजी ने सब कुछ सुना और चुप हो गये। सोचने लगे—यह स्त्री है, जिसने केवल मेरे ध्यान पर अपना जीवन समर्पण कर दिया है। इस विचार से बालाजी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। जिस प्रेम ने एक स्त्री का जीवन जलाकर भस्म कर दिया हो उसके लिए एक मनुष्य के धैर्य को जला डालना कोई बड़ी बात नहीं! प्रेम के सामने धैर्य कोई वस्तु नहीं है। वह बोले—माधवी! तुम-जैसी देवियाँ भारत का गौरव हैं। मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ कि तुम्हारे प्रेम-जैसी अनमोल वस्तु इस प्रकार मेरे हाथ आ रही है। यदि तुमने मेरे लिए योगिनी बनना स्वीकार किया है तो मैं भी तुम्हारे लिए इस सन्यास और वैराग्य को त्याग सकता हूँ। जिसके लिए तुमने अपने को मिटा दिया है, वह तुम्हारे लिए बड़ा-से-बड़ा बलिदान करने से भी नहीं हिचकिचायेगा।

माधवी इसके लिए पहले ही से प्रस्तुत थी, तुरन्त बोली—स्वामीजी! मैं परम अबला और बुद्धिहीना स्त्री हूँ। परन्तु मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि निज विलास का ध्यान आज तक एक पल के लिए भी मेरे मन में नहीं आया। यदि आपने यह विचार किया कि मेरे प्रेम का उद्देश्य केवल यह है कि आपके चरणों में सांसारिक बन्धनों की बेड़ियाँ डाल दूँ, तो (हाथ जोड़कर) आपने इसका तत्त्व नहीं समझा। मेरे प्रेम का उद्देश्य वही था, जो आज मुझे प्राप्त हो गया। आज का दिन मेरे जीवन का

सबसे शुभ दिन है। आज मैं अपने प्राणनाथ के सम्मुख खड़ी हूँ और अपने कानों से उनकी अमृतमयी वाणी सुन रही हूँ। स्वामीजी! मुझे आशा न थी कि इस जीवन में मुझे यह दिन देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। यदि मेरे पास संसार का राज्य होता तो मैं इस आनन्द में उसे आपके चरणों में समर्पण कर देती। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अब इन चरणों से अलग न कीजियेगा। मैं सन्यास ले लूँगी। और आपके संग रहूँगी। मैं वैरागिनी बनूँगी, भभूति रमाऊँगी; परन्तु आपका संग न छोड़ूँगी। प्राणनाथ! मैंने बहुत दुःख सहे हैं, अब यह जलन नहीं सही जाती।

यह कहते-कहते माधवी का कण्ठ रुँध गया और आँखों से प्रेम की धारा बहने लगी। उससे वहाँ न बैठा गया। उठकर प्रणाम किया और विरजन के पास आकर बैठ गयी। वृजरानी ने उसे गले लगा लिया और पूछा—क्या बातचीत हुई?

माधवी—जो तुम चाहती थीं।

वृजरानी—सच, क्या बोले?

माधवी—यह न बतलाऊँगी।

वृजरानी को मानो पड़ा हुआ धन मिल गया। बोली—ईश्वर ने बहुत दिनों में मेरा मनोरथ पूरा किया। मैं अपने यहाँ से विवाह करूँगी।

माधवी नैराश्य-भाव से मुसकरायी। विरजन ने कम्पित स्वर से कहा—हमको भूल तो न जायेगी? उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर वह स्वर सँभालकर बोली—हमसे अब तू बिछुड़ जायेगी।

माधवी—मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी।

विरजन—चल, बातें न बना!

माधवी—देख लेना।

विरजन—देखा है। जोड़ा कैसा पहनेगी?

माधवी—उज्ज्वल, जैसे बगुले का पर

विरजन—सोहाग का जोड़ा केसरिया रंग का होता है।

माधवी—मेरा श्वेत रहेगा।

विरजन—तुझे चन्द्रहार बहुत भाता था। मैं अपना दे दूँगी।

माधवी—हार के स्थान पर कण्ठी दे देना।

विरजन—कैसी बातें कर रही है?

माधवी—अपने शृङ्गार की

विरजन—तेरी बातें समझ में नहीं आतीं। तू इस समय इतनी उदास क्यों है? तूने इस रत्न के लिए कैसी-कैसी तपस्याएँ कीं, कैसा-कैसा योग साधा, कैसे-कैसे व्रत किये और आज तुझे जब वह रत्न मिल गया तो हर्षित नहीं देख पड़ती।

माधवी—तुम विवाह की बातचीत करती हो इससे मुझे दुःख होता है।

विरजन—यही तो प्रसन्न होने की बात है।

माधवी—बहिन! मेरे भाग्य में वह प्रसन्नता लिखी ही नहीं। जो पक्षी बादलों में घोंसला बनाना चाहता है, वह सर्वदा डालियों पर रहता है। मैंने निर्णय कर लिया है कि जीवन का यह शेष समय इसी प्रकार प्रेम का सपना देखने में काट दूँगी।

---

[२५]

विदाई

दूसरे दिन बालाजी स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर राजा धर्मसिंह की प्रतीक्षा करने लगे। आज राजघाट पर एक विशाल गोशाला का शिला-रोपण होनेवाला था, नगर की हाट-बाट और वीथियाँ मुसकुराती हुई जान पड़ती थीं। सड़क के दोनों पार्श्व में झण्डे और झण्डियाँ लहरा रही थीं। गृहद्वार फूलों की माला पहिने स्वागत के लिए तैयार थे; क्योंकि आज उस स्वदेश-प्रेमी का शुभागमन है, जिसने अपना सर्वस्व देश के हित बलिदान कर दिया है।

हर्ष की देवी अपनी सखी-सहेलियों के संग टहल रही थी। वायु झूमती थी। दुःख और विषाद का कहीं नाम न था। ठौर-ठौर पर बधाइयाँ बज रही थीं। पुरुष सुहावने वस्त्र पहने इठलाते थे। स्त्रियाँ सोलहो शृंगार किये मंगल-गीत गाती थीं। बालक-मण्डली केसरिया साफा धारण किये कलोलें करती थीं। हर पुरुष-स्त्री के मुख से प्रसन्नता झलक रही थी, क्योंकि आज एक सच्चे जाति-हितैषी का शुभागमन है जिसने अपना सर्वस्व जाति के हित भेंट कर दिया है।

बालाजी जब अपने सुहृदों के संग राजघाट की ओर चले तो सूर्य भगवान् ने पूर्व दिशा से निकलकर उनका स्वागत किया। उनका तेजस्वी मुखमण्डल ज्योंही लोगों ने देखा, सहस्रों मुखों से 'भारत की जय' का घोर शब्द सुनायी दिया और वायुमण्डल को चीरता हुआ आकाश-शिखर तक जा पहुँचा। घण्टा और शखों की ध्वनि निनादित हुई और उत्सव का सरस राग वायु में गूँजने लगा। जिस प्रकार दीपक को देखते ही पतग उसे घेर लेते हैं, उसी प्रकार बालाजी को देखकर लोग बड़ी शीघ्रता से उनके चतुर्दिक् एकत्र हो गये। भारत-सभा के सवा सौ सभ्यों ने अभिवादन किया। उनकी सुन्दर वर्दियाँ और मनचले घोड़े नेत्रों में खुबे जाते थे। इस सभा का एक-एक सभ्य जाति का सच्चा हितैषी था और उसके उमंग-भरे शब्द लोगों के चित्त को उत्साह से पूर्ण कर देते थे। सड़क के दोनों ओर दर्शकों की श्रेणी लगी थी। बधाइयाँ बज रही थीं। पुष्प और मेघों की वृष्टि हो रही थी। ठौर-ठौर नगर की ललनाएँ शृंगार किये स्वर्ण के थाल में कपूर, फूल और चन्दन लिये आरती करती जाती थीं। दूकानें नवागत वधू की भाँति सुसज्जित थीं। सारा नगर अपनी सजावट से वाटिका को लज्जित करता था और जिस प्रकार श्रावण मास में काली घटाएँ उठती हैं और रह-रहकर वन की गरज हृदय को कँपा देती है उसी प्रकार जनता की उमंगवर्द्धक ध्वनि (भारत की जय) हृदय में उत्साह और उत्तेजना उत्पन्न करती थी। जब बालाजी

चौक में पहुँचे तो उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। बालक वृन्द ऊदे रंग के लैसदार कोट पहिने, केसरिया पगड़ी बाँधे, हाथों में सुन्दर छड़ियाँ लिये मार्ग पर खड़े थे। बालाजी को देखते ही वे दस-दस की श्रेणियों में हो गये और अपने डण्डे बजाकर यह ओजस्वी गीत गाने लगे —

बालाजी तेरा आना मुबारक होवे।
धनि-धनि भाग्य हैं इस नगरी के, धनि-धनि भाग्य हमारे॥
धनि-धनि इस नगरी के वासी, जहँ तव चरण पधारे।
बालाजी तेरा आना मुबारक होवे॥

कैसा चित्ताकर्षक दृश्य था। गीत यद्यपि साधारण था, परन्तु अनेक और सधे हुए स्वरों ने मिलकर ऐसा मनोहर और प्रभावशाली बना दिया था कि लोगों के पाँव वहीं रुक गये। चतुर्दिक् सन्नाटा छा गया। सन्नाटे में यह राग ऐसा सुहावना प्रतीत होता था जैसे रात्रि के सन्नाटे में बुल-बुल का चहकना। सारे दर्शक चित्र की भाँति खड़े थे। दीन भारतवासियों, तुमने ऐसे दृश्य कहाँ देखे? इस समय जी भरकर देख लो। तुम वेश्याओं के नृत्य-वाद्य से सन्तुष्ट हो गये, वाराङ्गनाओं की काम-लीलाएँ बहुत देख चुके, खूब सैर-सपाटे किये, परन्तु यह सच्चा आनन्द और यह सुखद उत्साह, जो इस समय तुम अनुभव कर रहे हो तुम्हें कभी और भी प्राप्त हुआ था? मनमोहिनी वेश्याओं के संगीत और सुन्दरियों का काम-कौतुक तुम्हारी वैषयिक इच्छाओं को उत्तेजित करते हैं, किन्तु तुम्हारे उत्साहों को और निर्बल बना देते हैं और ऐसे दृश्य तुम्हारे हृदयों में जातीयता और जाति-अभिमान का संचार करते हैं। यदि तुमने अपने जीवन में एक बार भी यह दृश्य देखा है, तो उसका पवित्र चिह्न तुम्हारे हृदय से कभी नहीं मिटेगा।

बालाजी का दिव्य मुखमण्डल आत्मिक आनन्द की ज्योति से प्रकाशित था और नेत्रों से जात्यभिमान की किरणें निकल रही थीं। जिस प्रकार कृषक अपने लहलहाते हुए खेत को देखकर आनन्दोन्मत्त हो जाता

है, वही दशा इस समय बालाजी की थी। जब राग बन्द हो गया, तो उन्होंने कई डग आगे बढकर दो छोटे-छोटे बच्चों को उठाकर अपने कन्धों पर बैठा लिया और बोले, 'भारत-माता की जय !'

इस प्रकार शनै-शनै लोग राजघाट पर एकत्र हुए। वहाँ गोशाला का एक गगनस्पर्शी विशाल भवन स्वागत के लिये खड़ा था। आँगन में मखमल का बिछावन बिछा हुआ था। गृहद्वार और स्तम्भ फूल-पत्तियों से सुसज्जित खड़े थे। भवन के भीतर एक सहस्र गायें बँधी हुई थीं। बालाजी ने अपने हाथों से उनकी नाँदों में खली-भूसा डाला। उन्हें प्यार से थपकियाँ दीं। एक विस्तृत गृह में संगमरमर का अष्टभुज कुण्ड बना हुआ था। वह दूध से परिपूर्ण था। बालाजी ने एक चुल्लू दूध लेकर नेत्रों से लगाया और पान किया।

अभी आँगन में लोग शान्ति से बैठने भी न पाये थे कि कई मनुष्य दौड़े हुए आये और बोले—पण्डित बदलू शास्त्री, सेठ उत्तमचन्द्र और लाला माखनलाल बाहर खड़े कोलाहल मचा रहे हैं और कहते हैं कि हमको बालाजी से दो-दो बातें कर लेने दो। बदलू शास्त्री काशी के विख्यात पण्डित थे। सुन्दर चन्द्र-तिलक लगाने, हरी बनात का अँगरखा परिधान करते और बसन्ती पगड़ी बाँधते थे। उत्तमचन्द्र और माखनलाल दोनों नगर के धनी और लक्षाधीश मनुष्य थे। उपाधि के लिए सहस्रों व्यय करते और मुख्य पदाधिकारियों का सम्मान और सत्कार करना अपना प्रधान कर्त्तव्य जानते थे। इन महापुरुषों का नगर के मनुष्यों पर बड़ा दबाव था। बदलू शास्त्री जब कभी शास्त्रार्थ करते, तो निःसन्देह प्रतिवादी की पराजय होती। विशेषकर काशी के पण्डे और प्रागवाल तथा इसी पन्थ के अन्य धार्मिकगण तो उनके पसीने की जगह रुधिर बहाने को उद्यत रहते थे। शास्त्रीजी काशी में हिन्दू-धर्म के रक्षक और महान् स्तम्भ प्रसिद्ध थे। उत्तमचन्द्र और माखनलाल भी धार्मिक उत्साह की मूर्त्ति थे। लोग बहुत दिनों से बालाजी से शास्त्रार्थ करने का अवसर ढूँढ रहे थे। आज

उनका मनोरथ पूरा हुआ। वे पडों और प्राग्वालों का एक दल लिये आ पहुँचे।

बालाजी ने इन महात्माओं के आने का समाचार सुना तो बाहर निकल आये। परन्तु यहाँ की दशा विचित्र पायी। उभय पक्ष के लोग लाठियाँ सँभाले अँगरखे की बाँहें चढाये गुथने को उद्यत थे। शास्त्रीजी प्राग्वालों को भिड़ने के लिये ललकार रहे थे और सेठजी उच्च स्वर से कह रहे थे कि इन शूद्रों की धज्जियाँ उड़ा दो। अभियोग चलेगा तो देखा जायगा। तुम्हारा बाल बाँका न होने पायेगा। माखनलाल साहब गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे कि निकल आये जिसे कुछ अभिमान हो। प्रत्येक को सब्ज बाग दिखा दूँगा। बालाजी ने जब यह रग देखा तो राजा धर्मसिंह से बोले—आप बदलू शास्त्री को जाकर समझा दीजिये कि वह इस दुष्टता को त्याग दें, अन्यथा दोनों पक्षवालों की हानि होगी और जगत् में उपहास होगा सो अलग।

राजा साहब के नेत्रों से अग्नि बरस रही थी। बोले—इस पुरुष से बातें करने में मैं अपनी अप्रतिष्ठा समझता हूँ। उसे प्राग्वालों के समूहों का अभिमान है। परन्तु मैं आज उसका सारा मद चूर्ण कर देता हूँ। उनका अभिप्राय इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि वे आपके ऊपर वार करें। पर जब तक मैं और मेरे पाँच पुत्र जीवित हैं तब तक कोई आपकी ओर कुदृष्टि से नहीं देख सकता। आपके एक सकेत-मात्र की देर है। मैं पलक मारते उन्हें इस दुष्टता का स्वाद चखा दूँगा।

बालाजी जान गये कि यह वीर उमग में आ गया है। राजपूत जब उमग में आता है तो उसे मरने-मारने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। बोले—राजा साहब, आप दूरदर्शी होकर ऐसे वचन कहते हैं? यह अवसर ऐसे वचनों का नहीं है। आगे बढकर अपने आदमियों को रोकिये, नहीं तो परिणाम बुरा होगा।

बालाजी यह कहते-कहते अचानक रुक गये। समुद्र की तरंगों की

भाँति लोग इधर-उधर से उमड़ते चले आते थे। हाथों में लाठियाँ थीं और नेत्रों में रुधिर की लाली; मुखमण्डल क्रुद्ध, भृकुटी कुटिल। देखते-देखते यह जन-समुदाय प्राग्वालों के सिर पर पहुँच गया और समय सन्निकट था कि लाठियाँ सिर को चूमें कि बालाजी विद्युत् की भाँति लपककर एक घोड़े पर सवार हो गये और अति उच्च स्वर से बोले—

'भाइयो! यह क्या अन्धेर है? यदि मुझे अपना मित्र समझते हो तो झटपट हाथ नीचे कर लो और पैरों को एक इञ्च भी आगे न बढ़ने दो। मुझे अभिमान है कि तुम्हारे हृदयों में वीरोचित क्रोध और उमंग तरंगित हो रहे हैं। क्रोध एक पवित्र उद्वेग और पवित्र उत्साह है। परन्तु आत्म-संवरण उससे भी अधिक पवित्र धर्म है। इस समय अपने क्रोध को दृढ़ता से रोको। क्या तुम अपनी जाति के साथ कुल कर्तव्य पालन कर चुके कि इस प्रकार प्राण विसर्जन करने पर कटिबद्ध हो? क्या तुम दीपक लेकर भी कूप में गिरना चाहते हो? ये लोग तुम्हारे स्वदेशी बान्धव और तुम्हारे ही रुधिर हैं। उन्हें अपना शत्रु मत समझो। यदि वे मूर्ख हैं तो उनकी मूर्खता का निवारण करना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि वे तुम्हें अपशब्द कहें तो तुम बुरा मत मानो। यदि वे तुमसे युद्ध करने को प्रस्तुत हों, तो तुम नम्रता स्वीकार कर लो और एक चतुर वैद्य की भाँति अपने विचारहीन रोगियों की औषधि करने में तल्लीन हो जाओ। मेरी इस आज्ञा के प्रतिकूल यदि तुममें से किसी ने हाथ उठाया तो वह जाति का शत्रु होगा।'

इन समुचित शब्दों से चतुर्दिक् शान्ति छा गयी। जो जहाँ था वह वहीं चित्रलिखित-सा हो गया। इस मनुष्य के शब्दों में कहाँ का प्रभाव भरा था, जिसने पचास सहस्र मनुष्यों के उमड़ते हुए उद्वेग को इस प्रकार शीतल कर दिया; जिस प्रकार कोई चतुर सारथी दुष्ट घोड़ों को रोक लेता है! और यह शक्ति उसे किसने दी थी? न उसके सिर पर राजमुकुट था, न वह किसी सेना का नायक था। वह केवल उस पवित्र

और निःस्वार्थ जाति-सेवा का प्रताप था, जो उसने की थी। स्वजाति-सेवक के मान और प्रतिष्ठा का परिणाम वे बलिदान होते हैं, जो वह अपनी जाति के लिए करता है। पण्डों और प्राग्वालों ने बालाजी का प्रतापवान् रूप देखा और स्वर सुना, तो उनका क्रोध शान्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य के निकलने से कुहरा फट जाता है, उसी प्रकार बालाजी के आने से विरोधियों की सेना तितर-बितर हो गयी। बहुत-से मनुष्य—जो उपद्रव के उद्देश्य से आये थे—श्रद्धापूर्वक बालाजी के चरणों मे मस्तक झुकाकर उनके अनुयायियों के वर्ग में सम्मिलित हो गये। बदलू शास्त्री ने बहुत चाहा कि वह पण्डों के पक्षपात और मूर्खता को उत्तेजित करें, किन्तु सफलता न हुई।

उस समय बालाजी ने एक परम प्रभावशाली वक्तृता दी जिसका एक-एक शब्द आज तक सुननेवालों के हृदय पर अंकित है और जो भारत-वासियों के लिए सदा दीपक का काम करेगी। बालाजी की वक्तृ-ताएँ प्राय सारगर्भित हैं। परन्तु वह प्रतिभा, वह ओज जिनसे यह वक्तृता अलंकृत है, उनके किसी व्याख्यान में दीख नहीं पड़ते। उन्होंने अपने वाक्यों के जादू से थोड़ी ही देर में पण्डों को अहीरों और पासियों से गले मिला दिया। उस वक्तृता के अन्तिम शब्द थे —

'यदि आप दृढ़ता से कार्य करते जायँगे, तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट सिद्धि का स्वर्ण-स्तम्भ दिखायी देगा। परन्तु धैर्य को कभी हाथ से न जाने देना। दृढ़ता बड़ी प्रबल शक्ति है। दृढ़ता पुरुष के सब गुणों का राजा है। दृढ़ता वीरता का एक प्रधान अंग है। इसे कदापि हाथ से न जाने देना। तुम्हारी परीक्षाएँ होंगी। तुम्हें लगातार निराशाओं का सामना करना पड़ेगा। वे तुम्हारी प्रतिबन्धक होंगी। ऐसी दशा में दृढ़ता के अतिरिक्त कोई विश्वासपात्र पथ-प्रदर्शक नहीं मिलेगा। दृढ़ता यदि सफल न भी हो सके, तो ससार में अपना नाम छोड़ जाती है।'

बालाजी ने घर पहुँचकर समाचार-पत्र खोला, मुख पीला हो गया

और सकरुण हृदय से एक ठण्ढी साँस निकल आयी। धर्मसिंह ने घबरा-कर पूछा—कुशल तो है?

बालाजी—सदिया में नदी का बाँध फट गया; दस सहस्र मनुष्य गृहहीन हो गये।

धर्मसिंह—ओ हो!

बालाजी—सहस्रों मनुष्य प्रवाह की भेंट हो गये। सारा नगर नष्ट हो गया। घरों की छतों पर नावें चल रही हैं। भारत-सभा के लोग पहुँच गये हैं और यथाशक्ति लोगों की रक्षा कर रहे हैं; किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

धर्मसिंह (सजलनयन होकर)—हे ईश्वर! तू ही इन अनाथों का नाथ है।

बालाजी—गोपाल-गोशाला बह गयी। एक सहस्र गायें जलप्रवाह की भेंट हो गयीं। तीन घण्टे तक निरन्तर मूसलाधार पानी बरसता रहा। सोलह इञ्च पानी गिरा। नगर के उत्तरीय विभाग में सारा नगर एकत्र है। न रहने को गृह है, न खाने को अन्न। शव की राशियाँ लगी हुई हैं। बहुत-से लोग भूखे मर जाते हैं। लोगों के विलाप और करुण-क्रन्दन से कलेजा मुँह को आता है। सब उत्पात-पीड़ित मनुष्य बालाजी को बुलाने की रट लगा रहे हैं। उनका विचार है कि मेरे पहुँचने से उनके दुःख दूर हो जायेंगे।

कुछ काल तक बालाजी ध्यान में मग्न रहे, तत्पश्चात् बोले—मेरा जाना आवश्यक है। मैं तुरन्त जाऊँगा। आप सदिया की भारत-सभा को तार दे दीजिये कि वह इस कार्य में मेरी सहायता करने को उद्यत रहे।

राजा साहब ने सविनय निवेदन किया—आज्ञा हो तो मैं भी चलूँ?

बालाजी—मैं पहुँचकर आपको सूचना दूँगा। मेरे विचार में आपके जाने की कोई आवश्यकता न होगी।

धर्मसिंह—उत्तम होता कि आप प्रातःकाल ही जाते।

और निःस्वार्थ जाति-सेवा का प्रताप था, जो उसने की थी। स्वजाति-सेवक के मान और प्रतिष्ठा का परिणाम वे बलिदान होते हैं, जो वह अपनी जाति के लिए करता है। पण्डों और प्राग्वालों ने बालाजी का प्रतापवान् रूप देखा और स्वर सुना, तो उनका क्रोध शान्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य के निकलने से कुहरा फट जाता है, उसी प्रकार बालाजी के आने से विरोधियों की सेना तितर-बितर हो गयी। बहुत-से मनुष्य—जो उपद्रव के उद्देश्य से आये थे—श्रद्धापूर्वक बालाजी के चरणों मे मस्तक झुकाकर उनके अनुयायियो के वर्ग में सम्मिलित हो गये। बदलू शास्त्री ने बहुत चाहा कि वह पण्डो के पक्षपात और मूर्खता को उत्तेजित करें, किन्तु सफलता न हुई।

उस समय बालाजी ने एक परम प्रभावशाली वक्तृता दी जिसका एक-एक शब्द आज तक सुननेवालों के हृदय पर अंकित है और जो भारत-वासियों के लिए सदा दीपक का काम करेगी। बालाजी की वक्तृताएँ प्राय सारगर्भित हैं। परन्तु वह प्रतिभा, वह ओज जिनसे यह वक्तृता अलंकृत है, उनके किसी व्याख्यान में दीख नहीं पड़ते। उन्होने अपने वाक्यों के जादू से थोड़ी ही देर में पण्डो को अहीरो और पासियों से गले मिला दिया। उस वक्तृता के अन्तिम शब्द थे —

'यदि आप दृढता से कार्य करते जायँगे, तो अवश्य एक दिन आपको अभीष्ट सिद्धि का स्वर्ण-स्तम्भ दिखायी देगा। परन्तु धैर्य को कभी हाथ से न जाने देना। दृढता बड़ी प्रबल शक्ति है। दृढता पुरुष के सब गुणों का राजा है। दृढता वीरता का एक प्रधान अग है। इसे कदापि हाथ से न जाने देना। तुम्हारी परीक्षाएँ होंगी। तुम्हें लगातार निराशाओं का सामना करना पड़ेगा। वे तुम्हारी प्रतिबन्धक होंगी। ऐसी दशा में दृढता के अतिरिक्त कोई विश्वासपात्र पथ-प्रदर्शक नहीं मिलेगा। दृढता यदि सफल न भी हो सके, तो ससार में अपना नाम छोड़ जाती है।'

बालाजी ने घर पहुँचकर समाचार-पत्र खोला, मुख पीला हो गया

और सकरुण हृदय से एक ठण्ढी साँस निकल आयी। धर्मसिंह ने घबरा-कर पूछा—कुशल तो है?

बालाजी—सदिया में नदी का बाँध फट गया; दस सहस्र मनुष्य गृहहीन हो गये।

धर्मसिंह—ओ हो!

बालाजी—सहस्रों मनुष्य प्रवाह की भेंट हो गये। सारा नगर नष्ट हो गया। घरों की छतों पर नावें चल रही हैं। भारत-सभा के लोग पहुँच गये हैं और यथाशक्ति लोगों की रक्षा कर रहे हैं; किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

धर्मसिंह (सजलनयन होकर)—हे ईश्वर! तू ही इन अनाथों का नाथ है।

बालाजी—गोपाल-गोशाला बह गयी। एक सहस्र गायें जलप्रवाह की भेंट हो गयीं। तीन घण्टे तक निरन्तर मूसलाधार पानी बरसता रहा। सोलह इञ्च पानी गिरा। नगर के उत्तरीय विभाग में सारा नगर एकत्र है। न रहने को गृह है, न खाने को अन्न। शव की राशियाँ लगी हुई हैं। बहुत-से लोग भूखे मर जाते हैं। लोगों के विलाप और करुण-क्रन्दन से कलेजा मुँह को आता है। सब उत्पात-पीड़ित मनुष्य बालाजी को बुलाने की रट लगा रहे हैं। उनका विचार है कि मेरे पहुँचने से उनके दुःख दूर हो जायेंगे।

कुछ काल तक बालाजी ध्यान में मग्न रहे, तत्पश्चात् बोले—मेरा जाना आवश्यक है। मैं तुरन्त जाऊँगा। आप सदिया की भारत-सभा को तार दे दीजिये कि वह इस कार्य में मेरी सहायता करने को उद्यत रहे।

राजा साहब ने सविनय निवेदन किया—आज्ञा हो तो मैं भी चलूँ?

बालाजी—मैं पहुँचकर आपको सूचना दूँगा। मेरे विचार में आपके जाने की कोई आवश्यकता न होगी।

धर्मसिंह—उत्तम होता कि आप प्रातःकाल ही जाते।

बालाजी—जी नहीं। मुझे यहाँ एक क्षण भी ठहरना कठिन जान पड़ता है। अभी मुझे वहाँ तक पहुँचने में कई दिन लगेंगे।

पल-भर में नगर में ये समाचार फैल गये कि सदिया में बाढ आ गयी और बालाजी इस समय वहाँ जा रहे हैं। यह सुनते ही सहस्रों मनुष्य बालाजी को पहुँचाने के लिए निकल पड़े। नौ बजते-बजते द्वार पर पचीस सहस्र मनुष्यों का समुदाय एकत्र हो गया। सदिया की दुर्घटना प्रत्येक मनुष्य के मुख पर थी। लोग उन आपत्ति-पीड़ित मनुष्यों की दशा पर सहानुभूति और चिन्ता प्रकशित कर रहे थे। सैकड़ों मनुष्य बालाजी के संग जाने को कटिबद्ध हुए। सदियावालों की सहायता के लिए एक फण्ड खोलने का परामर्श होने लगा।

उधर धर्मसिंह के अन्त पुर में नगर की मुख्य प्रतिष्ठित स्त्रियों ने आज सुवामा को धन्यवाद देने के लिए एक सभा एकत्र की थी। उस उच्च प्रासाद का एक-एक कोना स्त्रियों से भरा हुआ था। प्रथम वृजरानी ने कई स्त्रियों के साथ एक मगलमय सुहावना गीत गाया। उसके पीछे सब स्त्रियाँ मण्डल बाँधकर गाते-बजाते आरती का थाल लिए सुवामा के गृह पर आयीं। सेवती और चन्द्रा अतिथि-सत्कार करने के लिए पहिले ही से प्रस्तुत थीं। सुवामा प्रत्येक महिलाओं से गले मिली और उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे अक में भी ऐसे ही सुपूत बच्चे खेलें। फिर रानीजी ने उसकी आरती की और गाना होने लगा। आज माधवी का मुखमण्डल पुष्प की भाँति खिला हुआ था। कल की भाँति मात्र वह उदास और चिन्तित न थी। आशाएँ विष की गाँठ हैं। उन्हीं आशाओं ने उसे कल रुलाया था, किन्तु आज उसका चित्त उन आशाओं से रिक्त हो गया है। इसी लिए मुखमण्डल दिव्य और नेत्र विकसित हैं। निराश रहकर उस देवी ने सारी आयु काट दी; परन्तु आशापूर्ण रहकर उससे एक दिन का दु ख भी न सहा गया।

सुहावने रागों के अलाप से भवन गूँज रहा था कि अचानक सदिया

का समाचार यहाँ भी पहुँचा और राजा धर्मसिंह यह कहते हुए सुनायी दिये—आप लोग बालाजी को विदा करने के लिए तैयार हो जायें। वे अभी सदिया जाते हैं।

यह सुनते ही अर्धरात्रि का सन्नाटा छा गया। सुवामा घबड़ाकर उठी और द्वार की ओर लपकी, मानो वह बालाजी को रोक लेगी। उसके संग सब-की-सब स्त्रियाँ उठ खड़ी हुईं और उसके पीछे-पीछे चलीं। वृजरानी ने कहा—चची! क्या उन्हें बरबस विदा करोगी? अभी तो वे अपने कमरे में हैं।

'मैं उन्हें न जाने दूँगी। विदा करना कैसा?'

वृजरानी—उनका सदिया जाना आवश्यक है।

सुवामा—मैं क्या सदिया को लेकर चाटूँगी? भाड़ में जाय! मैं भी तो कोई हूँ? मेरा भी तो उन पर कोई अधिकार है?

वृजरानी—तुम्हें मेरी शपथ, इस समय ऐसी बातें न करना। सहस्रों मनुष्य केवल उनके भरोसे पर जी रहे हैं। यह न जायेंगे तो प्रलय हो जायगा।

माता की ममता ने मनुष्यत्व और जातित्व को दबा लिया था, परन्तु वृजरानी ने समझा-बुझाकर उसे रोक लिया। सुवामा इस घटना को स्मरण करके सर्वदा पछताया करती थी। उसे आश्चर्य होता था कि मैं आपे से बाहर क्यों हो गयी थी! रानीजी ने पूछा—विरजन! बालाजी को जयमाल कौन पहिनायेगा?

विरजन—आप।

रानीजी—और तुम क्या करोगी?

विरजन—मैं उनके माथे पर तिलक लगाऊँगी।

रानीजी—माधवी कहाँ है?

विरजन—(धीरे से) उसे न छेड़ो। बेचारी अपने ध्यान में मग्न है।

इसी बीच में बालाजी बाहर निकले। स्त्रियाँ भी उनकी ओर बढ़ीं।

बालाजी ने सुवामा को देखा तो निकट आकर उसके चरः
सुवामा ने उन्हें उठाकर हृदय से लगाया। कुछ कहना चाह
ममता से मुख न खोल सकी। रानीजी फूलों की जयमाल
उनके कण्ठ में डाल दूँ, किन्तु चरण थर्राये और आगे न
वृजरानी चन्दन का थाल लेकर चली, परन्तु नेत्र श्रावण-घन
सने लगे। तब माधवी चली! उसके नेत्रों में प्रेम की झलक
पर प्रेम की लाली! अधरों पर मोहिनी मुसकान झलक रह
प्रेमानन्द में मग्न था। उसने बालाजी की ओर ऐसी चितव
अपार प्रेम से भरी हुई थी। तब सिर नीचा करके फूलों
उनके गले मे डाली। ललाट पर चन्दन का तिलक लगाया
की न्यूनता थी, वह भी पूरी हो गयी। उस समय बालाजी
ली। उन्हें प्रतीत हुआ कि मैं अपार प्रेम के समुद्र में बहा
धैर्य का लंगर उठ गया और उस मनुष्य की भाँति जो अ
फिसल पड़ा हो, उन्होंने माधवी की बाँह पकड़ ली। पर
तिनके का उन्होंने सहारा लिया, वह स्वयं प्रेम की धार में
बहा जा रहा था। उनका हाथ पड़ते ही माधवी के रोम-
दौड़ गयी। शरीर में स्वेद-बिन्दु झलकने लगे और जिस
झोंके से पुष्पदल पर पड़े हुए ओस के जलकण पृथ्वी पर
उसी प्रकार माधवी के नेत्रों से अश्रु के बिन्दु बालाजी के
पड़े। ये प्रेम के मोती थे, जो उन मतवाली आँखों ने व
किये। आज से ये आँखें फिर न रोयेंगी।

अवकाश पर तारे छिटके हुए थे और उनकी आड़ में
यह दृश्य देख रही थीं! आज प्रातःकाल बालाजी के स्वाग
गाया गया था—

बालाजी, तेरा आना मुबारक होवे।

और इस समय स्त्रियाँ अपने मन-भावन स्वरों से गा रही